तिब्बत में बौद्धधर्म

लेखक

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

आवश्यक-सूचना

नेपाल के शिलालेखों और ह्वान्-चाङ् के वर्णन से मालूम होता है [illegible] ई० में वर्तमान था। यही [illegible] इस लिये दीपंकरश्रीज्ञान [illegible] ले के सनों में पृष्ठ १-२१, [illegible] -११ में ६० वर्ष जोड़ कर पढ़ना चाहिये। [illegible]

पृष्ठ १४ में ७४२ ई० के स्थान पर ८४५ ई० पढ़ना चाहिये।

पृष्ठ ३१ में १२२८ ई० " " १२०८ ई० " "

पृष्ठ २८ में—प्रसिद्ध 'मंजुश्रीमूलकल्प' का दुगे-बडि—बुलो-शोसने पंडित कुमारकलश के साथ मिलकर उल्था किया।

प्रकाशक

श्री शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, काशी

तिब्बत में बौद्धधर्म

लेखक
त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

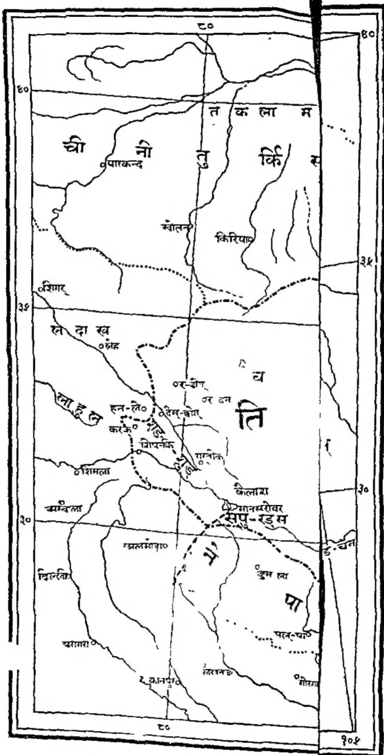
प्रकाशक
श्री शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, काशी

प्रथम संस्करण } १०००

१९९१

{ मूल्य
{ १॥)





८०
४०
त क ला म
ची नी तु र्कि स
खोतन
किरिया
३५
ल दा ख
लेह
ति
हन-ले
देम-चोग
शिमला
कैलाश
मानसरोवर
सप-रड्स
३०
कानपुर
पा
८०

तिव्वत में बौद्धधर्म

ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी से ही बौद्धधर्म भारत की सीमा से बाहर फैलने लगा था। उस वक्त उस के धर्म-दूत न केवल बर्मा और लंका में बल्कि मेसोपोटामिया, मेसीदोनिया और मिश्र तक पहुँच गए थे। इसी समय मध्य-एशिया में बौद्धधर्म ही नहीं फैला, बल्कि परंपरा के अनुसार सम्राट् अशोक का एक पुत्र कूचा आस-पास के और प्रदेशों मे अपना राज्य भी क़ायम करने में सफल हुआ। जनश्रुति तो चीन में बौद्धधर्म का पहुँचना पहले बतलाती है किंतु ५६ ई० में खोतन के काश्यप-मातंग द्वारा किए गए बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद तो अब भी प्राप्य हैं। ३७२ ई० में बौद्धधर्म कोरिया में, और ५३८ ई० में जापान में स्थापित हुआ। हिंदू-चीन में भी वह ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व पहुँच चुका था। इस प्रकार जब कि बौद्धधर्म भारत से दूर दूर देशों में इतना पहले पहुँच चुका था, तो पड़ोसी भोट (तिव्वत) देश में ५८० ई० से पूर्व वह क्यों न पहुँच सका ?

वस्तुतः इस का कारण भोट देश की भौगोलिक स्थिति और बहुत कुछ उसी के कारण सामाजिक विकास की गति का मंद होना है। साधारणतः भोट देश में बस्तियाँ समुद्र तल से दस हज़ार से १२ हज़ार फ़ीट ऊपर बस

हुई हैं। यदि यह कहीं इन से नीची हैं, तो अन्यत्र १४ हजार फ़ीट पर भी आप उन्हें देखेंगे। इतनी ऊँचाई पर होने के कारण एक तो वहाँ सर्दी बहुत पड़ती है और दूसरे वहाँ के पहाड़ वृक्ष-वनस्पति-शून्य हैं। इस प्रकार वहाँ जीवन-संघर्ष आरंभ से ही मनुष्य के लिए कुछ कठिन रहा है। लेकिन भोट देश-वासियों ने बहुत पहले ही इस को अधिक भीषण न होने देने के लिए जनसंख्या-निरोध की औषधि ढूँढ़ निकाली, और सभी भाइयों की एक ही पत्नी का नियम बना डाला। अब उतने ही खेत और उतने ही भेड़-बकरियों के गल्ले उन की आने वाली संतति के लिए भी काफ़ी होने लगे। वह अपनी वर्तमान अवस्था से संतुष्ट रहने लगे। उस समय उन की प्रधान जीविका पशु-पालन थी। यदि परंपरा स्वीकार की जाय, तो कृषि का आरंभ (ब्य-लि) स्पु-लृदे-गुङ्-र्ग्यल्[1] (प्रायः ईसवी सन के आरंभ) के समय में हुआ। वस्तुतः यदि बाहर की दुनिया ने दुर्गम हिमालय की घाटियों को पार कर भोट-वासियों को बाह्य दुनिया का परिचय न कराया होता, तो कौन जानता है कि तिब्बत में अभी तक कोई परिवर्तन हुआ होता ?

तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रवेश के बारे में कुछ कहने से पूर्व यहाँ तिब्बत देश के बारे में कुछ कह देना आवश्यक है। तिब्बत देश पूर्व से पश्चिम तक प्रायः उतना ही लंबा है, जितना कि भारत। उत्तर-दक्षिण इस की चौड़ाई छः-सात सौ मील है। इस के चार भाग हैं—

(१) *पश्चिमी तिब्बत*—जिस में लद्दाख, शुङ्-शुङ्[2] या गूगे (मान-

---

[1] डाक्टर ए० एच० फ्राङ्के, 'एँटिक्विटीज़ अव् इंडियन टिबेट', भाग २, पृ० ७१।

[2] भोट-भाषा के शब्दों के उच्चारण में इन नियमों का ध्यान रखने पर वह मध्य भोट के उच्चारण के अनुसार हो जायगा।—

(१) जितने अक्षर-समूह में केवल एक स्वर उच्चारित होता है, उसे एक विभाजक रेखा से अलग किया गया है; जैसे—ख्र-शिस् (= ट-शि)।

(२) स्वर-युक्तवर्ण के पीछे के स्वरहीन द्, ल्, स् उच्चारित नहीं होते; सिर्फ़ उन के पूर्व वाले अ, उ, ओ स्वर, विकृत हो अॅ, उॅ और ओॅ (जर्मन ä, ü और ö) बन जाते हैं।



सरोवर और लदाख के बीच का प्रदेश), और सपु-रङ्स् (मानसरोवर से पूर्व ग्चुङ् तक का प्रदेश) हैं।

(२) *मध्य तिब्बत*—अर्थात् ग्चुङ् (नेपाल, सपु-रङ्स्, द्वुस्, ल्हो-ख और ब्यङ्-थङ् से घिरा प्रदेश, जिस में ऽफग्-रि, ब्क्र-शिस्-ल्हुन्-पो, ञ-नम् और स्क्यिद्-रोङ् की बस्तियाँ हैं), द्वुस् (द्वुस्-छु नदी की उपत्यका का प्रदेश, जिस में द्गऽ-ल्दन्, ल्ह-स, छु-शल् आदि की बस्तियाँ हैं), ल्हो-ख (छु-शल् से नीचे ब्रह्मपुत्र का तटवर्ती प्रदेश, जिस के निचले भाग में कोङ्-पो प्रदेश है), और कोङ्-पो (पूर्व-वाहिनी ब्रह्मपुत्र का अंतिम और उष्णतम भाग, जो कि भोट के राजवंश का ही मूल-स्थान न था, बल्कि वर्तमान दलाई लामा और टशी लामा की भी जन्मभूमि है। यहीं यर्-लुङ् बस्ती है, जहाँ स्रोङ्-ब्चन्-स्गम्-पो के पूर्वज रहा करते थे)।

(३) *पूर्वीय तिब्बत*—अर्थात, खम्स् (पूर्व में चीन के युन्-नन् और से-चु-आन् प्रांतों तक फैला प्रदेश, जिस में छब्-म्दो और ब्दे-र्गेस् के मशहूर मठ स्थापित हुए), अम्-दो (खम्स् के उत्तर में चीन से मध्य-एशिया के वणिक्-पथ के पास तक फैला प्रदेश) जिस में ब्क्र-शिस्-ख्यिल्, चो-नस्, स्कु-ऽबुम् के प्रसिद्ध मठ स्थापित हुए। महान् सुधारक चोङ्-ख-प भी यहीं की चोङ्-ख बस्ती में उत्पन्न हुआ था; कोकोनोर का महान् सरोवर और मंगोलों

---

(३) सभी स्वर ह्रस्व लिखे जाते हैं। आमतौर से उन का उच्चारण डेढ़ मात्रा के बराबर होता है; किंतु दीर्घ और प्लुत उच्चारण भी होते हैं।

(४) जिन वर्णों के नीचे हलंत का चिह्न (्) लगा है, उन के उच्चारण नहीं करने चाहिए, विशेष कर यदि वह स्वरयुक्त वर्ण के पूर्व हों।

(५) संयुक्त वर्णों का उच्चारण होना चाहिए, हाँ यह ध्यान रखना चाहिए, कि—

क्र, त्र, प्र=ट; ख्र, फ्र=ठ; ग्र, द्र, ब्र=ड

(६) भोट वर्णमाला के कुछ अक्षरों के मैंने इस प्रकार संकेत रक्खे हैं—

[illegible] (Ts), [illegible] (Tsh), [illegible] (Dz), [illegible] (Zh), [illegible] (Z), ऽ(h या ')

की युगुर् जाति यहीं बसती है) और गह् (खम्स् से दक्षिण में)।

(४) च्यङ्-थङ्—(चङ्-थङ्), यह वह अतिशीतल मैदान है, जो मध्य और पश्चिमीय तिब्बत से चीनी तुर्किस्तान तक फैला हुआ है।

१—आरंभ-युग (५८०-७६३ ई०)

स्रोङ्-गम्पो-ग्सम्-पो के जन्म (५५७ ई०) से पूर्व भोट देश छोटी-छोटी सर्दारियों में बँटा था। स्रोङ्-च्चन् का जन्म मध्य तिब्बत के उष्णतम प्रदेश कोङ्-पो में हुआ था। कृषि के साथ सभ्यता का भी आरंभ इसी प्रदेश में होना स्वाभाविक था। परंपरा तो बतलाती है, कि स्रोङ्-च्चन् का प्रथम पूर्वज कोसलराज प्रसेनजित् (ई० पू० पाँचवीं-छठी शताब्दी) का पुत्र था। जो भी हो, इस में तो शक नहीं कि स्रोङ्-च्चन् का वंश और उस का प्रदेश अधिक उन्नतावस्था में था। यह प्रदेश औरों की अपेक्षा अधिक घना भी बसा था। बाहर के राजाओं और सम्राटों की शान-व-शौकत की कथायें यहाँ पहुँच चुकी थीं। बाप के मरने के बाद तेरह वर्ष की अवस्था में ही स्रोङ्-च्चन् अपने छोटे राज्य का स्वामी बना। किंतु वह उतने पर सन्तुष्ट रहने वाला कब था? अपने समकालीन सम्राट् हर्षवर्धन की भाँति उसे भी दिग्विजय की सूझी। निडर और कष्ट सहन में पटु अपने भोट योद्धाओं को सगठित कर उस ने एक सुदृढ़ सेना बनाई, और दबुस् (मध्य) और ग्चङ् के प्रदेशों को अपने अधिकार में कर, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अपने सैन्यबल द्वारा उस ने पश्चिम में गिलगित, उत्तर में चीनी तुर्किस्तान तक को ही नहीं जीत लिया, बल्कि नेपाल के राजा तथा चीन के सम्राट् को भी कुछ प्रदेशों के साथ अपनी कन्यायें देने पर बाध्य किया। इस प्रकार विजयी भोट देश का सभ्य दुनिया में प्रवेश हुआ। स्रोङ्-च्चन् सारे भोट और पार्श्ववर्ती प्रदेशों का सम्राट् बना।

इस विशाल साम्राज्य के सचालन के लिए उसे कई बातें करनी पड़ीं, जिस में पहिली बात थी राजधानी को ब्रह्मपुत्र उपत्यका से हटा कर उस के लिए दबुस्-छु नदी के तट पर ल्ह-स (ल्हासा) नगर का निर्माण करना।

इस के पूर्व जो र(र्वं)-स (अज-भूमि) था, वह अब ल्ह-स (देवभूमि) हो गया। ५८० ई० में नेपालाधिपति अंशुवर्मा की कन्या ख्रि-चुन् सम्राट् के विवाहार्थ ल्हासा पहुँची। दूसरे वर्ष चीन-राजकन्या कोङ्-जो भी राजामात्य मृगर् के साथ ल्हासा आई। इस से पूर्व ही सम्राट् ने यह अनुभव किया था, कि इतने बड़े राज्य का संचालन एक लिपि के बिना सुकर नहीं। इसी लिए वह थोन्-मि (थोन्-गाँव-निवासी) अनु के पुत्र को सोलह साथियों[1] के साथ भारत में विद्याध्ययन के लिए भेज चुका था। नेपाल-राज-कन्या थोन्-मि के साथ ही ल्हासा पहुँची।

नेपाल-राजकुमारी अपने साथ अक्षोभ्य, मैत्रेय और चंदन की तारा की मूर्तियाँ ले आई। उधर चीन-राजकन्या ने एक पुरातन बुद्ध-प्रतिमा—जो किसी समय भारत से मध्य-एशिया और वहाँ से चीन पहुँची थी—दहेज में पाई। चीन-कुमारी रानी कोङ्-जो हुई। उस ने अपनी प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए ल्हासा नगर के उत्तरी भाग में र-मो-छे का मंदिर बनवाया। नेपाल-कुमारी रानी ख्रि-चुन के पास इतना धन न था, कि वह अपनी मूर्तियों के लिए मंदिर बनवाती। सम्राट् स्रोङ्-व्चन् को जब यह मालूम हुआ, तो उस ने एक जलाशय पटवा कर, ल्हासा नगर के मध्य में ऽख्रुल्-स्नङ् का सुंदर मंदिर बनवाया, जिसे आज कल जो-खङ् कहते हैं।

थोन्-मि ने राजा के आदेशानुसार भोट-भाषा लिखने के लिए एक लिपि बनाई जो कश्मीर की उस समय की लिपि के समान थी। भोट-भाषा में उतने स्वरों की आवश्यकता न थी, इस लिए उस ने अ को छोड़ इ-उ-ए-ओ यह चार स्वर बनाए। अ को ले कर व्यंजनों की संख्या तीस की। वर्गों के चतुर्थ अक्षर (घ, झ इत्यादि) और मूर्धन्य ष अनावश्यक होने के कारण छोड़ दिए गए। साथ ही विशेष उच्चारण के लिए च़, छ़, ज़, श़, स़, ऽ—इन छः नए अक्षरों का निर्माण करना पड़ा। थोन्-मि ने स्वयं भोट-भाषा का प्रथम व्याकरण बनाया। स्रोङ्-व्चन् ने लिपि और व्याकरण आदि के सीखने के लिए अपना चार वर्ष का

---

[1] ओबरमिलर, 'बु-स्तोन्', भाग २, पृ० १८३।

समय दिया। ल्हासा के लोह-पर्वत (लूचगस्-रि) में उत्कीर्ण यह गुफा आज भी दिखलाई जाती है, जिस में रह कर स्रोङ्-ब्चन् चार वर्ष तक इस नई लिपि और व्याकरण का अभ्यास करता रहा।

कहते हैं, मिट्टी के बर्तन, पनचक्की और करघे का प्रचार भी इसी सम्राट् के समय में हुआ। जो भी हो, इस में तो शक नहीं, कि सम्राट् स्रोङ्-ब्चन् तिब्बत का एक सुशासक ही न था, बल्कि यह भोट देश के आनेवाले साहित्य, धर्म, राजनीति आदि सभी का निर्माता था। अपनी दोनों बौद्ध रानियों और अमात्य थोन्-मि के प्रभाव से यह बौद्ध हुआ। बौद्धधर्म ने अब एक अशिक्षित जाति को सुसंस्कृत बनाने का अवसर पाया। कला-कौशल, आचार-व्यवहार, शिक्षण-अध्ययन सभी के लिए चीनी और भारतीय बौद्ध विद्वानों को खुला अवसर मिला। उन्हों ने बड़ी उदारता से काम लिया। यह कोशिश न की, कि इस अशिक्षित जाति के (जिस का न कोई पुराना साहित्य था, न जिस की कोई उन्नत संस्कृति थी) व्यक्तित्व को मिटा कर उसे भारतीय या चीनी बनाने की कोशिश करते। उन्हों ने बहुत सी बातें भोट जाति को दी, किंतु सब का भोटी-करण कर के। बौद्ध-धर्मग्रंथों के अनुवाद करने के लिए भारतीय पंडित कुसर (या कुमार), नेपाली शीलमंजु, कश्मीरी तुन, चीनी भिक्षु महादेव, तथा थोन्-मि और उस के शिष्य धर्मकोश एवं, ल्ह-लुङ्-र्दोस्-र्जे-द्पल् नियुक्त हुए। थोन्-मि की आठ पुस्तकों में से अब कुछ ही बाक़ी हैं। शेष पुराने अनुवाद नहीं मिलते। कारण, यह है कि आरंभ के अनुवाद उतने अच्छे नहीं थे, इस लिए पीछे के सुंदर अनुवादों के सामने उन का प्रचार नहीं हो सका। कहा जाता है, थोन्-मि ने 'करडव्यूह-सूत्र', 'रत्नमेघ-सूत्र' और 'कर्मशतक' के अनुवाद किए थे। चीनी आचार्यों ने विशेषतः गणित और वैद्यक की पुस्तकों के अनुवाद किए। इस काम में भारत, ली (चीनी तुर्किस्तान) और चीन तीनों देशों के बौद्ध विद्वानों ने सहयोग दिया था। ली देश के दो भिक्षुओं ने सम्राट् की जीवनी भी लिखी थी।

बासठ वर्ष के सुदीर्घ और प्रशांत शासन के बाद ६३८ ई० में ८२ वर्ष की अवस्था में सम्राट् स्रोङ्-ब्चन् ने ल्हासा के उत्तरवाले फन्-युल प्रदेश के

सल-मी स्थान में अपना शरीर छोड़ा। उस की मृत्यु के बाद सम्राज्ञी कोङ्-जो की आज्ञा से चीन से आई बुद्ध-मूर्ति भी ऽम्रुल्-स्नङ् में ला कर स्थापित की गई, और आज तक वहीं है।

सम्राट् मङ्-स्रोङ्-मङ्-च्चन् (६३८-६५२ ई०)—सम्राट् स्रोङ्-च्चन् को, नेपाली रानी *खिन्-चुन्* से एक कुमार *गुङ्-स्रोङ्-गङ्-च्चन्* पैदा हुआ था, किंतु वह पिता के जीवन ही में जाता रहा। पिता के मरने पर चीनी रानी का पुत्र मङ्-स्रोङ्-मङ्-च्चन् पंद्रह वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठा। पिता के महान् व्यक्तित्व ने इस के काम को यद्यपि ढाँक लिया, तो भी एक बार इसे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिला। स्रोङ्-च्चन् की मृत्यु के बाद, (यद्यपि नया सम्राट् चीन-राजकन्या का पुत्र था, तो भी) चीनियों ने भोट की शक्ति को निर्बल समझ उन से युद्ध छेड़ा, किंतु चीनियों को हारना पड़ा। धार्मिक बातों में इस सम्राट् ने तथा इस के पुत्र *दुर्-स्रोङ्* (६५२-७० ई०) ने अपने पूर्वज का अनुसरण किया। दुर्-स्रोङ् ने चीन-सम्राट् की कन्या वुन्-शिङ्-कोङ् से व्याह किया था।

खि-ल्दे-ग्चुग्-र्तन् (६७०-७४२)—अपने पिता दुर्-स्रोङ् के बाद राजगद्दी पर बैठा। इस बार भी चीन ने अपने खोए हुए प्रदेशों को छीनना चाहा। गिल्गित के लिए एक खासी लड़ाई छिड़ गई। अब की बार भी चीन को हारना पड़ा। चीन-सम्राट् ने अपनी कन्या चिन्-चेङ् (या *ग्यिम-श्य*) को भोट-युवराज ऽजङ्-छ्व-ल्ह-द्पोन् के लिए प्रदान किया। जिस वक्त राजकुमार अपनी भावी पत्नी से मिलने जा रहा था, उसी समय किसी आकस्मिक घटना-वश उसका शरीरांत हो गया। अंत में राजकुमारी का सम्राट् ग्चुग्-र्तन् के साथ व्याह हुआ। इस व्याह के दहेज में भोटराज को ह्वाङ्-हो नदी तटवर्ती चिन्-चु और कु-ए-इ प्रदेश मिले। (ब्लन्-क) मूलकोष और (ङग्) ज्ञानकुमार ने इस समय कुछ बौद्धग्रंथों के अनुवाद किए, जिन मे 'सुवर्ण-प्रभासोत्तम सूत्र' मुख्य था।

२—शांतरक्षित-युग (७६३-९८२ ई०)

खि-स्रोङ्-ल्दे-च्चन् (७४२-८५ ई०)—सम्राट् खि-ल्दे-ग्चुग्-

[illegible] (७०४ ई.) में [illegible] [illegible] बौद्धदेश का करीब था। इन्हों [illegible] कि इस के [illegible] हो [illegible] किंतु उस में कहीं अधिक विशाल साहित्य का उसने विकास हुआ। ठि-स्रोङ्-दे-चन् के समय में [illegible] इन दोनों सौ वर्षों में बहुत अर्थ [illegible] था। [illegible] देश में संस्कृति का एक नया प्रवाह उमड़ आया था। [illegible] अब भी अधिकतर चीनी था, क्योंकि अब तक के अधिकांश [illegible] भारत से आये थे, तो भी वह भारत में पूरे [illegible] थे। [illegible] में चीनी विद्वानों का भी प्रभाव था, विशेष-कर [illegible] ही चीन-देशीय थे।

ठि-स्रोङ्-दे-चन् के समय (७८० ई.) में बौद्धधर्म के प्रवेश से पूर्व भी भोट में [illegible] प्रकार का धर्म प्रचलित था, जो अधिकतर भूत-प्रेत की पूजा पर निर्भर था, जिसे कि बोन-धर्म कहते हैं। यद्यपि बौद्धधर्म ने बहुत उदारता दिखलाई (जहाँ तक कि उन के जितने ही पूजा-प्रकारों से संबंध था) तो भी दोनों धर्मों में प्रधानता के लिए संघर्ष जारी रहा। ठि-स्रोङ्-दे-चन् के बाल्य-काल में बौद्ध-विरोधी मंत्रियों का इतना प्राबल्य हो गया, कि उन्होंने [illegible] ने पहले तो बुद्ध-मूर्ति को हटा कर चीन भेजना चाहा, किंतु पीछे उसे जमीन के भीतर गाड़ दिया, और मंदिर को कसाई-खाने के रूप में परिणत कर दिया। उसी समय दो एक मंत्रियों पर कुछ आकस्मिक आपत्तियाँ पड़ीं, जिस से डर कर उन्होंने मूर्ति नेपाल की सीमा के समीप वाले मङ्-युल् प्रदेश के [illegible] स्थान में भेज दी।

युवा राजा को बड़े होकर अपने पूर्वजों के चरित्रों को पढ़ने का भी अवसर मिला। तब राजा को अपने पूर्वजों की बौद्धधर्म पर अपार श्रद्धा का पता लगा। उस ने छिपाए हुए ग्रंथों की खोज करा कर उन्हें चुपचाप पढ़ना शुरू किया, और अंत में उस को भी पूर्वजों जैसी ही बौद्धधर्म पर आस्था हो गई। उस ने दो चीनी विद्वानों से और [illegible], कश्मीरी पंडित अनंत को धर्म-ग्रंथों के अनुवाद के काम में लगाया। किंतु बोन्-धर्मी मंत्रियों के विरोध के

कारण उन्हें मङ्-युल् भेज देना पड़ा। पंडित अनंत और चीनी विद्वान् सो मङ्-युल् ही में ठहरे, जहाँ का तत्कालीन प्रांताधिपति बौद्ध था; किंतु ग्सल्-स्नङ्—जो कि आगे चल कर ये-शेस्-द्बङ्-पो (ज्ञानेंद्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ—वहाँ से भारत चला गया। महाबोधि (बोधगया) के दर्शन के बाद यह नालंदा पहुँचा। वहाँ उस ने आचार्य शांतरक्षित के बारे में सुना। किंतु आचार्य उस समय वहाँ न थे। नेपाल पहुँचने पर सौभाग्य से उसे आचार्य का दर्शन हुआ। ज्ञानेंद्र के आग्रह पर आचार्य मङ्-युल् पधारे। कुछ दिनों वहाँ रह कर यह फिर नेपाल लौट गए। हाँ, यह याद रखना चाहिए, कि उस समय मध्यभारत (युक्त-प्रांत, विहार) से तिब्बत जाने का प्रधान रास्ता नेपाल और स्क्यिद्-रोङ् (मङ्-युल्) हो कर ही था। ज्ञानेंद्र को आचार्य शांतरक्षित के सत्संग से बहुत लाभ हुआ।

इस सम्राट् के समय में भी चीन ने भोट की तलवार से परीक्षा ली। भोट सेना विजयी हुई। इस विजय की कथा उसी समय एक पाषाण-स्तंभ पर लिखी गई, जो अब भी ल्हासा में पोतला के नीचे मौजूद है।

अब ज्ञानेंद्र मङ्-युल् से ल्हासा गया। सम्राट् से धर्म-चर्चा हुई। सम्राट् और कितने ही अमात्य बौद्धधर्म को फिर उस के पूर्व-स्थान पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे, किंतु बलशाली मंत्री मा-शङ् खोम्-प-स्क्येद् के सामने किसी को हिम्मत नहीं पड़ती थी। अंत में सम्राट् और अन्य अमात्यों की राय से मा-शङ् जीवित ही दफन कर दिया गया, और इस प्रकार बोन्-धर्म की शक्ति हमेशा के लिए क्षीण हो गई। अब सम्राट् की आज्ञा से ज्ञानेंद्र आचार्य शांतरक्षित को बुलाने गया। आचार्य के लिए सब से बड़ी दिक्कत भाषा की थी; किंतु कश्मीरी पंडित अनंत बहुत वर्षों तक तिब्बत में रहने के कारण भोट-भाषा का अच्छा ज्ञान रखते थे। आचार्य संस्कृत में बोलते थे; और वह उस का उल्था कर दिया करते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि भोट-सम्राट् ने नालंदा के इस अद्भुत विद्वान् का खूब सन्मान किया। ल्हासा पहुँच कर चार मास तक आचार्य राजमहल में दश कुशल (शुभकर्म), अठारह धातु और द्वादशांग प्रतीत्यसमुत्पाद पर व्याख्यान देते रहे। सम्राट् उन का

बड़ा ही अनुरक्त शिष्य हो गया। इसी समय नदी की बाढ़ से फङ्-थङ् स्थान बह गया, लोहितगिरि (मर-पो-रि) पर बिजली गिरी, और देश में ढोरों की बीमारी फैल गई। लोगों ने शोर किया, कि यह आचार्य के उपदेश से रुष्ट हुए तिब्बत के देवताओं के प्रकोप का फल है। लाचार इच्छा न रहते हुए भी सम्राट् आचार्य का कुछ दिनों के लिए वापस भेजने पर मजबूर हुए।

कितने ही समय के बाद सम्राट् ने ज्ञानेंद्र को धर्म-ग्रंथों के संग्रह के लिए चीन, और सङ्-शि (चीन)-भिक्षु को तीन साथियों के साथ आचार्य शांतरक्षित को बुलाने के लिए भारत भेजा। ज्ञानेंद्र के चीन से लौटने पर भी जब आचार्य नहीं आए, तो सम्राट् ने ज्ञानेंद्र को भी रवाना किया। आचार्य शांतरक्षित ७५ वर्ष की बुढ़ापे की अवस्था में भी धर्म-प्रचार के उत्तम अवसर को हाथ से कब छोड़ने वाले थे। वह फिर तिब्बत पहुँचे। ब्रह्मपुत्र की उपत्यका के ब्सम्-यस् (सम्-ये) में उन का निवास कराया गया।

यद्यपि बौद्धधर्म का तिब्बत में प्रवेश प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था किंतु अब तक न कोई भोट-देशीय भिक्षु बना था, और न यहाँ कोई मठ ही स्थापित हुआ था। राजा की इच्छानुसार आचार्य ने ब्रह्मपुत्र से प्रायः दो मील उत्तर एक भूमि मठ के निर्माण के लिए चुनी। यहीं मगधेश्वर महाराज धर्मपाल (७६९-८०९ ई०) के बनवाये उड्यंतपुरी (बिहार-शरीफ) महाविहार के नमूने (?) पर बसम्-यस् विहार की नींव डाली गई। विहार का आरंभ ७६३ ई०[1] में हुआ, और समाप्ति ७७५ ई० में। मठ के मध्य में सुमेरु की भाँति प्रधान विहार (मंदिर) बनाया गया, और चारों तरफ चार महाद्वीप और आठ उपद्वीपों की भाँति भिक्षुओं के रहने के लिए बारह ग्लिङ् (द्वीप) बनाए गए। इन में दस निम्न हैं—(१) रम्स्-ग्सुम-रब्ङ्-ग्लिङ्, (२) ब्दुद्-ऽदुल्-स्ङग्-प-ग्लिङ्, (३) नम्-दग्-ख्रिम्स्-ख्ङ्-ग्लिङ्, (४) दूगे-र्ग्यस्-ऽये-म-ग्लिङ, (५) ऽज्ञल्-ग्सेर्-ख्ङ्-ग्लिङ्; (६) मि-ग्यो-ब्सम्-ग्तन-ग्लिङ्; (७) ब्दे-

[1] जलशश (७६३ ई०) की जगह पर अग्नि-शश गलती से लिखा मालूम होता है।

स्व्योर्-छुङ्स्-पडि-ग्लिङ् , (८) द्कोर्-म्जोद्-पे-हर्-ग्लिङ् ; (९) व्रम-ग्लिङ् ; (१०) ग्यं-गर्-ग्लिङ्। दो के नामों का पता नहीं। प्रधान विहार के चारों कोनों पर, कुछ हटकर, पकी ईंटों के लाल नीले आदि रंगों वाले चार सुंदर स्तूप बनवाए गए। चक्रवाल की भाँति एक ऊँचे प्राकार से सारा मठ घेर दिया गया और चारों दिशाओं में प्रवेश के लिए चार फाटक लगाए गए। इस विहार के बनाने में बारह वर्ष लगे। जिस समय विहार तैयार हुआ होगा, उस समय यह अद्भुत चीज रही होगी, लेकिन दुर्भाग्यवश, बारहवीं शताब्दी के आरंभ में किसी असावधानी के कारण उस में आग लग गई, जिस से अधिकांश मकान जल गए। फिर र (वं)-लो-च-व दो-र्जे-ग्रग्स् ने उसी शताब्दी में इस का पुनर्निर्माण कराया। यह मठ तिब्बत के अन्य पुराने मठों—श-लु (स्थापित १०४० ई०), स्नर्-थङ् (स्थापित ११५३ ई०) आदि—की भाँति पहाड़ की भुजा पर स्थित न हो कर मध्य-भारत के पुराने मठों की भाँति, समतल भूमि पर बना है।

विहार-निर्माण आरंभ करने के समय ही राजा को इच्छा हुई, कि भोट-देशीय पुरुष भिक्षु-दीक्षा से दीक्षित किए जावें। विहार का कुछ काम हो जाने पर आचार्य ने नालंदा से सर्वास्तिवादी भिक्षुओं को बुलवाया। भिक्षु-नियम के अनुसार भिक्षु बनाना संघ का काम है, कोई एक व्यक्ति भिक्षु नहीं बना सकता। यद्यपि मध्य-भारत (युक्त-प्रांत, विहार) से बाहर पाँच भिक्षु भी होने से कोरम पूरा हो जाता है, तो भी आचार्य ने बारह भिक्षु बुलाए; और मेप-वर्ष (७६७ ई०) में—(१) ज्ञानेंद्र, (२) द्पल्-द्व्यङ्स् , (३) (ग्चङ्) शीलेंद्र-रक्षित, (४) (मं) रिन्-छेन्-म्छोग् , (५) (ङ्खोन्) क्लुडि-द्वङ-पो, (६) (ग्चङ्) देवेंद्ररक्षित, (७) (प-गोर्) वैरोचनरक्षित—यह सात भोट देशीय कुल-पुत्र भिक्षु बनाए गए।

भिक्षु-संघ और भिक्षु-विहार स्थापित कर आचार्य शांतरक्षित ने भोट देश में बौद्धधर्म की नींव दृढ़ कर दी। यहाँ एक और व्यक्ति के विषय में कुछ लिख देना आवश्यक है। तिब्बत के पुरातन भिक्षुओं द्वारा स्थापित परंपरावाले आज कल ञिङ्-म-प कहे जाते हैं। यद्यपि यह लोग आचार्य शांतरक्षित को भी अपना नेता मानते हैं, तो भी अधिक श्रेय एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति पद्मसंभव

को देते हैं। इस का कारण, उन का वास्तविकता की अपेक्षा जादू तथा मंत्र में असाधारण अनुराग है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है, कि पद्मसंभव शांतरक्षित के अनुगामी भिक्षुओं में एक साधारण भिक्षु था। सूतन्-ग्युर में इस की भिक्षु-नियम-संबंधी कुछ छोटी पुस्तकें भी मिलती हैं। पद्मसंभव राजा इंद्रभूति (इंद्रबोधि) का पुत्र कहा जाता है, किंतु भारतीय परंपरा, इंद्रभूति को चौरासी सिद्धों में मानती हुई भी, उस के पुत्र पद्मसंभव के बारे में कुछ नहीं जानती। इंद्रभूति आदि-सिद्ध सरह (७५० ई०) के बाद हुआ था, फिर उस के पुत्र का बुसम्-यस् बनने के समय तिब्बत पहुँचना भी संभव नहीं। सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है, कि एक साधारण भिक्षु पद्मसंभव को आसमान पर चढ़ाने के लिए, पीछे के ञिङ्-म-प संप्रदाय वालों ने तरह तरह की अद्भुत कहानियाँ गढ़ीं; और इस के लिए मूल-संस्थापक आचार्य शांतरक्षित तो पीछे डाल दिए गए, और पद्मसंभव को तिब्बत में बुद्ध से भी अधिक पूजा होने लगी।

अन्य कार्यों से निवृत्त हो आचार्य ने बौद्धग्रंथों के अनुवाद की ओर ध्यान दिया। अभी तक अनुवादों का कोई पक्का निर्धारित नियम नहीं बना था। इसी लिए मालूम होता है, इस समय के बहुत से अनुवाद पीछे अग्राह्य हो गए। आचार्य शांतरक्षित के अनुवाद किए ग्रंथों में दिङ्नाग-विरचित 'हेतुचक्र' भी है जिसे उन्हों ने लो-च-व धर्मकोष की सहायता से अनुवादित किया था।

सौ वर्ष की आयु में (प्रायः ७८० ई० के करीब) घोड़े के पैर की चोट से आचार्य का देहांत हो गया। विहार के पूर्व की छोटी पहाड़ी पर उन का शरीर एक स्तूप में रक्खा गया। साढ़े ग्यारह सौ वर्ष तक, मानो वह उसी पहाड़ी टेकरी पर से अपने कार्य को देख रेख कर रहे थे। ३०-३५ वर्ष हुए वह जीर्ण-शीर्ण स्तूप गिर पड़ा, और आचार्य का अस्थिमय शरीर नीचे गिर गया। वहाँ से जमा कर आचार्य शांतरक्षित का कपाल और कुछ हड्डियाँ इस समय प्रधान मंदिर में शीशे के अंदर रक्खी गई हैं।

आचार्य शांतरक्षित असाधारण दार्शनिक थे, इस का हाल ही में, संस्कृत में प्रकाशित उन के दार्शनिक ग्रंथ 'तत्त्व-संग्रह' से पता लगता है। वह अपने समय के बौद्ध, ब्राह्मण, जैन सभी दर्शनों के प्रगाढ़ विद्वान थे। ऐसे विद्वान् की देश में भी प्रतिष्ठा कम न थी, किंतु यह वह समय था, जब कि भारत से साहस-मय जीवन नष्ट न हुआ था। देश में प्राप्त सम्मान का ख्याल छोड़ ७१ वर्ष की उम्र में हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करने को वह तैयार हो गए, जब उन्हों ने देखा, कि इस प्रकार वह अपने धर्म की सेवा कर सकते हैं। इस त्याग के लिए ही उन का नाम बोधिसत्व पड़ा, और आज भी तिब्बत में अधिकांश लोग उन्हें आचार्य शांतरक्षित की जगह म्खन्-छेन् (महापंडित) बोधिसत्व के नाम से ही ज्यादा जानते हैं।

आचार्य शांतरक्षित के बाद उन के शिष्य द्पल्-द्ब्यङ्स् (श्रीघोष) संघ-नायक बने। स्रोङ्-च्चन् के काल से ही भोट में चीनी बौद्ध विद्वानों की प्रधानता थी, यद्यपि कभी कभी कुछ भारतीय विद्वान भिक्षु भी वहाँ पहुँच जाते थे। सम्राट् ख्रि-स्रोङ्-ल्दे-च्चन् की गंभीर ज्ञानपिपासा ने उन्हें बौद्धधर्म के मूल-स्रोत भारतवर्ष की ओर आकृष्ट किया। आचार्य शांतरक्षित के पहुँचने के बाद तो अब भारतीय भिक्षुओं की प्रधानता हो गई। किंतु, आचार्य के देहांत के बाद महत्वाकांक्षी चीनी भिक्षुओं ने विवाद खड़ा किया, और वह भी एक सिद्धांत की आड़ में। उन्हों ने उपदेश देना शुरू किया कि सारे कर्मों को छोड़ कर परम निष्कर्मण्यता का आश्रय लेना ही बुद्ध-पद की प्राप्ति का एक मात्र साधन है। श्रीघोष इस के विरुद्ध, यथार्थ सिद्धांत का प्रतिपादन करते रहे। धीरे धीरे स्तोन्-मुन्-प (अकर्मण्यतावादी या सद्यो-वादी) सम्प्रदाय का जोर बढ़ने लगा, और शांतरक्षित के अनुयायी चेन्-मिन्-प (कर्मण्यतावादी, या क्रमिकवादी) का बल घटने लगा। इस झगड़े से घबड़ा कर ज्ञानेंद्र ब्सम्-यस् छोड़ दक्षिण ल्हो-ब्रग् में ध्यान और एकांत-चिंतन के लिए चले गए। जब राजा ने कहा, कि सिद्धांत और आचार दोनों में सब को आचार्य बोधिसत्व के सिद्धांत को मानना चाहिए, तो अकर्मण्यता-वादी दल ने कर्मण्यता-वादियों को मार डालने की धमकी देनी

को देते हैं। इस का कारण, उन का वास्तविकता की अपेक्षा जादू तथा मंत्र में असाधारण अनुराग है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है, कि पद्मसंभव शांतरक्षित के अनुगामी भिक्षुओं में एक साधारण भिक्षु था। स्तन्-ऽग्युर में इस की भिक्षु-नियम-संबंधी कुछ छोटी पुस्तकें भी मिलती हैं। पद्मसंभव राजा इंद्रभूति (इंद्रबोधि) का पुत्र कहा जाता है, किंतु भारतीय परंपरा, इंद्रभूति को चौरासी सिद्धों में मानती हुई भी, उस के पुत्र पद्मसंभव के बारे में कुछ नहीं जानती। इंद्रभूति आदि-सिद्ध सरह (७५० ई०) के बाद हुआ था, फिर उस के पुत्र का वसम्-यस् बनने के समय तिब्बत पहुँचना भी संभव नहीं। सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है, कि एक साधारण भिक्षु पद्मसंभव को आसमान पर चढ़ाने के लिए, पीछे के निङ्-म-प संप्रदाय वालों ने तरह तरह की अद्भुत कहानियाँ गढ़ीं; और इस के लिए मूल-संस्थापक आचार्य शांतरक्षित तो पीछे डाल दिए गए, और पद्मसंभव की तिब्बत में बुद्ध से भी अधिक पूजा होने लगी।

अन्य कार्यों से निवृत्त हो आचार्य ने बौद्धग्रंथों के अनुवाद की ओर ध्यान दिया। अभी तक अनुवादों का कोई पक्का निर्धारित नियम नहीं बना था। इसी लिए मालूम होता है, इस समय के बहुत से अनुवाद पीछे अग्राह्य हो गए। आचार्य शांतरक्षित के अनुवाद किए ग्रंथों में दिङ्नाग-विरचित 'हेतुचक्र' भी है जिसे उन्हों ने लो-च-व धर्मकोष की सहायता से अनुवादित किया था।

सौ वर्ष की आयु में (प्रायः ७८० ई० के करीब) घोड़े के पैर की चोट से आचार्य का देहांत हो गया। विहार के पूर्व की छोटी पहाड़ी पर उन का शरीर एक स्तूप में रक्खा गया। साढ़े ग्यारह सौ वर्ष तक, मानो वह उसी पहाड़ी टेकरी पर से अपने कार्य की देख रेख कर रहे थे। ३०-३५ वर्ष हुए वह जीर्ण-शीर्ण स्तूप गिर पड़ा, और आचार्य का अस्थिमय शरीर नीचे गिर गया। वहाँ से जमा कर आचार्य शांतरक्षित का कपाल और कुछ हड्डियाँ इस समय प्रधान मंदिर में शीशे के अंदर रक्खी गई हैं।

आचार्य शांतरक्षित असाधारण दार्शनिक थे, इस का हाल ही में, संस्कृत में प्रकाशित उन के दार्शनिक ग्रंथ 'तत्त्व-संग्रह' से पता लगता है। वह अपने समय के बौद्ध, ब्राह्मण, जैन सभी दर्शनों के प्रगाढ़ विद्वान् थे। ऐसे विद्वान् की देश में भी प्रतिष्ठा कम न थी, किंतु यह वह समय था, जब कि भारत से साहस-मय जीवन नष्ट न हुआ था। देश में प्राप्त सम्मान का ख्याल छोड़ ७५ वर्ष की उम्र में हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करने को वह तैयार हो गए, जब उन्हों ने देखा, कि इस प्रकार वह अपने धर्म की सेवा कर सकते हैं। इस त्याग के लिए ही उन का नाम बोधिसत्व पड़ा, और आज भी तिब्बत में *अधिकांश लोग उन्हें आचार्य शांतरक्षित की जगह* मखन्-छेन् (महापंडित) बोधिसत्व के नाम से ही ज्यादा जानते हैं।

आचार्य शांतरक्षित के बाद उन के शिष्य दूपल्-द्ब्यङ्स् (श्रीघोष) संघ-नायक बने। स्रोङ्-ब्चन् के काल से ही भोट में चीनी बौद्ध विद्वानों की प्रधानता थी, यद्यपि कभी कभी कुछ भारतीय विद्वान भिक्षु भी वहाँ पहुँच जाते थे। सम्राट् ख्रि-स्रोङ्-ल्दे-ब्चन् की गंभीर ज्ञानपिपासा ने उन्हें बौद्धधर्म के मूल-स्रोत भारतवर्ष को ओर आकृष्ट किया। आचार्य शांतरक्षित के पहुँचने के बाद तो अब भारतीय भिक्षुओं की प्रधानता हो गई। किंतु, आचार्य के देहांत के बाद महत्वाकांक्षी चीनी भिक्षुओं ने विवाद खड़ा किया, और वह भी एक सिद्धांत की आड़ में। उन्हों ने उपदेश देना शुरू किया कि सारे कर्मों को छोड़ कर परम निष्कर्मण्यता का आश्रय लेना ही बुद्ध-पद की प्राप्ति का एक मात्र साधन है। श्रीघोष इस के विरुद्ध, यथार्थ सिद्धांत का प्रतिपादन करते रहे। धीरे धीरे स्तोन्-सुन्-प (अकर्मण्यतावादी या सद्यो-वादी) सम्प्रदाय का जोर बढ़ने लगा, और शांतरक्षित के अनुयायी चेन्-मिन्-प (कर्मण्यतावादी, या क्रमिकवादी) का बल घटने लगा। इस झगड़े से घबड़ा कर ज्ञानेंद्र ब्सम्-यस् छोड़ दक्षिण ल्हो-ब्रग् में ध्यान और एकांत-चिंतन के लिए चले गए। जब राजा ने कहा, कि सिद्धांत और आचार दोनों में सब को आचार्य बोधिसत्व के सिद्धांत को मानना चाहिए, तो अकर्मण्यता-वादी दल ने कर्मण्यता-वादियों को मार डालने की धमकी देनी

शुरू की। अंत में इस झगड़े को मिटाने का उपाय जानने के लिए राजा ने ज्ञानेंद्र के पास आदमी भेजा। दो बार ज्ञानेंद्र ने आने से इन्कार कर दिया, किंतु तीसरी बार वह राजा के पास आए। राजा के पूछने पर उन्हों ने बताया कि हमारे आचार्य ने कहा था, कि यदि कोई विवाद खड़ा हो, तो हमारे शिष्य कमलशील को बुलाना। अपने गुरु की भाँति आचार्य कमलशील भी नालंदा के एक महान विद्वान थे। शांतरक्षित के ५००० श्लोकों के दार्शनिक ग्रंथ 'तत्त्वसंग्रह' पर इन्हों ने एक विद्वत्तापूर्ण पंजिका लिखी है। यह दोनों ग्रंथ बड़ोदा की गायकवाड़-ओरियंटल-सीरीज़ में छप चुके हैं।

अकर्मण्यता-वादियों के नेता चीनी भिक्षु ह्वशाङ् को जब पता लगा, तो उस ने अपने पक्ष के प्रमाण में 'ध्यान-स्वप्न-चक्र' नामक ग्रंथ लिख कर, महायान सूत्रों से बहुत से प्रमाण जमा कर डाले। इस ने अपने शिष्यों को भी इस बड़े शास्त्रार्थ के लिए तैयार कर लिया। आचार्य कमलशील के पहुँचने पर, शास्त्रार्थ का समय नियत हुआ। सम्राट् ने स्वयं मध्यस्थ का आसन ग्रहण किया। दाहिनी ओर अकर्मण्यतावादी और उन के नेता ह्वशाङ् (भिक्षु)[1] बैठे, बाईं ओर आचार्य कमलशील, ज्ञानेंद्र, श्रीघोष और दूसरे लोग। सम्राट् ने दोनों पक्षों के मुखियों के हाथ में फूल की मालाएँ दे दीं, और कहा, जो हारे वह विजेता को माला दे और यहाँ से हमेशा के लिए चला जावे। ह्वशाङ् ने पहले अपने पक्ष के समर्थन में भाषण दिया, जिस का उत्तर आचार्य कमलशील ने दिया। इस के कहने की आवश्यकता नहीं, कि शास्त्रार्थ में दुभाषिया से काम लिया जाता था। अकर्मण्यतावादियों की अंत में पराजय हुई। वह आचार्य के हाथ में माला दे कर देश से निकल गए।

पीछे ह्वशाङ् ने धन-लोभ दे कर चार चीनी कसाइयों को भेजा, जिन्हों ने आचार्य कमलशील को मार डाला। ज्ञानेंद्र ने भी शोकाक्रांत हो निराहार से प्राण त्याग दिए, और सम्राट् भी ६९ वर्ष की अवस्था में (७४२ ई०) परलोक-गामी हुए।

---

[1] ह्वशाङ् यह चीनी शब्द है, जिस का अर्थ भिक्षु है। इस ह्वशाङ् का असली नाम मालूम नहीं।

इस समय आचार्य विमलमित्र, बुद्धगुह्य, शांतिगर्भ, और विशुद्धसिंह ने भोट-देशीय लो-च्-व (अनुवादक)[1]—धर्मालोक, (वन-दे) नंम्-मखऽ, (स्गो) रिन्-छेन-स्दे, नंम्-पर-मि-तोग्-प और शाक्य-प्रभ की सहायता से कितने ही ग्रंथों के अनुवाद किए। तो भी अभी वास्तविक अनुवाद का काल आरंभ न हुआ था।

मु-नि-ब्चन्-पो (७८५-८६ ई०)—सम्राट् ख्रि-स्राङ् वीर थे, किंतु उस से भी अधिक वह धार्मिक थे। उन के विचारों का असर उन की संतान पर पड़ा। जब उन के बाद उन का पुत्र मुनि-ब्चन्-पो गद्दी पर बैठा, तो वह दूसरा ही स्वप्न देखने लगा। उस का पिता और सारा घर धार्मिक शिक्षा, विशेष कर बोधिसत्व-आदर्श (अर्थात् दूसरों के हित के लिए तन, मन, धन ही नहीं, हाथ में आई अपनी मुक्ति तक का परित्याग करना) से सराबोर था। तरुण सम्राट् ने अपने आस-पास प्रजा में दरिद्रता देखी; जो दरिद्र नहीं थे, उन्हें भी उस ने अपने से अधिक धनी की शान-व-शौकत तथा अपमान भरे बर्ताव से असंतोष की भट्टी में जलते देखा। वह सोचने लगा, किस प्रकार इस दुःख का अंत किया जावे। अंत में उस की समझ में आया कि धन का सम-वितरण ही इस का एक मात्र उपाय है। इस प्रकार ७८५-८६ ई० में उस ने आर्थिक साम्यवाद का प्रयोग करना शुरू किया। किंतु इतने बड़े प्रयोग के लिए देश में क्षेत्र तैयार न था। श्रम के सम-वितरण के बिना कभी भी अर्थ का सम-वितरण सफल नहीं हो सकता। एक बार धन का सम-वितरण हो जाने पर आलसियों से कोई काम लेने वाला न रहा, थोड़े दिनों में खा-पी कर वह फिर फाक़ेमस्त हो गए, और दूसरे मेहनती लोगों के पास फिर संपत्ति जमा होने लगी। सम्राट् ने एक के बाद एक तीन बार तक अर्थ का सम-विभाग किया। तीसरी बार के बाद यह प्रयोग दूर के लोगों को ही नहीं, बल्कि उस

---

[1] लो-च्-व शब्द लोक और चक्षु दो शब्दों के आदि अक्षरों से मिल कर बना है। चाहे वह लोग लोक के चक्षु न भी हों, किंतु इस में तो शक नहीं कि भारतीय आचार्यों के लिए—जो भोट भाषा से अनभिज्ञ थे—वह अवश्य चक्षु थे।

की मां को भी असह्य हो गया, और इस प्रकार उन्नीस मास के शासन के बाद ही, माता द्वारा दिए गए विष से, इस महात्मा की मृत्यु हुई। मुनि-चू्चन-पो को कुछ लोग पागल कहेंगे, किंतु यदि वह पागल था, तो एक पवित्र आदर्श के पीछे। आज-कल जब कि मनन-शील पुरुषों की विचार-धारा संसार को साम्यवाद की ओर ले जा रही है, इस साम्यवाद के शहीद का आदर-पूर्वक स्मरण जरूर होगा।

खि-लुदे-च्चन्-पो या सद्-न-लेगम् (७८७-८१७ ई०)—मुनि-चचन-पो के बाद उस का भाई खि-लुदे-चचन्-पो सिंहासन पर बैठा। इस का भी बौद्धधर्म पर स्नेह अपने पिता और भाई से कम नहीं था। सुदूर पश्चिम बल्तिस्तान के सकर्-दों नगर में इस ने बौद्ध-मंदिर बनवाया। अब तक कितने ही ग्रंथों के अनुवाद भोट भाषा में हो चुके थे, किंतु अभी तक अनुवाद के शब्दों और भाषा में किसी खास नियम का पालन नहीं किया जाता था। जिस को जो प्रतिशब्द अच्छा लगा, वह उसी का प्रयोग करता था। अश्ववर्ष (७९० या ८०२ ई०) में सम्राट् ने अनुवाद करने वाले भारतीय पंडित जिनमित्र, सुरेंद्रबोधि, शीलेंद्रबोधि, दानशील, बोधिमित्र तथा उन के सहायक भोट विद्वान् रत्नरक्षित, धर्मताशील, ज्ञानसेन (ये-शेस्-स्दे) जयरक्षित, मंजुश्रीवर्म, रत्नेंद्रशील से कहा कि पहले देवपुत्र (मेरे) पिता के समय आचार्य बोधिसत्व, ज्ञानेंद्र, ज्ञानदेवकोष, ब्राह्मण अनंत आदि ने अनुवाद किए, किंतु उन्हों ने एक ऐसी भाषा का निर्माण किया, जो देश-वासियों के समझने लायक नहीं है। चीन, ली, सहोर आदि की भाषाओं के अनुवाद से प्रत्यनुवाद किए गए थे, जिन में प्रतिशब्द का कोई नियम नहीं रक्खा गया। इस की वजह से धर्मग्रंथों के समझने में कठिनाई होती है। इस लिए आप लोग अब सीधे संस्कृत से अनुवाद करें, और प्रतिशब्दों की एक तालिका बना लें। अनुवाद का एक नियम हो, जिस का उल्लंघन न होना चाहिए। पिछले अनुवादों का फिर से संशोधन कर देना चाहिए।

इस प्रकार नवीं शताब्दी के मध्य से संस्कृत ग्रंथों के नियमबद्ध अनु-

बाद भोट भाषा में होने लगे। इन अनुवादों में प्रतिशब्द चुनते समय संस्कृत के धातु-प्रत्ययों का भोट भाषा के धातु-प्रत्ययों से मेल होने का पूरा ख़्याल रक्खा गया है, और संस्कृत के हर एक विशेष शब्द के लिए एक एक शब्द नियत कर दिया गया है। उदाहरणार्थ—छोस्-ऽ जिन् (धर्म-धर), छोस्-स्क्योङ् (धर्मपाल)। हाँ, सङ्स्-ग्यंस् (बुद्ध), ब्यङ्-छुप् (बोधि) आदि कुछ शब्द जो पिछली दो शताब्दियों में बहुप्रचलित हो गए थे, उन्हें उन्हों ने वैसा ही रहने दिया। प्रतिशब्दों को चुन कर उन्हों ने पृथक् पुस्तकें बना लीं, जो 'व्युत्पत्ति' के नाम से अब भी स्तन-ऽ ग्युर् के भीतर मौजूद हैं[1]। महायान तथा दूसरे सूत्रों का अधिकांश अनुवाद इसी समय का है। इस समय कुछ तंत्र-ग्रंथों के भी अनुवाद हुए थे। इस समय के अनुवादों में नागार्जुन, असंग, वसुबंधु, चंद्रकीर्ति, विनीतदेव, शांतरक्षित, कमलशील आदि के कितने ही गंभीर दर्शन-ग्रंथ भी हैं। जिनमित्र, ये-शेस्-स्दे, धर्मताशील के अतिरिक्त भोट-देशीय आचार्य द्पल्-ब्र्चॆग्स् इस काल के महान् अनुवादक हैं। जितना अनुवाद-कार्य ७९०-८४० ई० में हुआ, उतना किसी काल में न हो सका।

रल्-प-चन् (८१७-८४१ ई०)—बड़े भाई (ग्लङ्) दर्-म के रहते भी पिता के मरने के बाद यही राजपद के योग्य समझा गया। यह पिता-पितामह से चले आते बौद्धधर्म के कार्य को चलाता ही नहीं रहा, बल्कि उस के प्रति अपनी भक्ति दिखाने में इस ने अपने पूर्वजों को भी मात करना चाहा। धर्मोपदेश सुनते वक्त यह अपने शिर के केशों पर रेशमी चादर बिछा कर उस पर व्याख्याता को बैठाता था। एक एक भिक्षु की सेवा के लिए इस ने सात सात कुटुंब नियुक्त किए थे। राज-कार्य में भी भिक्षुओं को बहुत अधिकार दे रक्खा था। राजधानी ल्हासा का सारा ही प्रबंध एक भिक्षु के हाथ में था। राजा का

---

[1] तिब्बत में भारतीय ग्रंथों के अनुवाद का काम भारतीय पंडित और भोट-देशीय विद्वान् मिल कर करते थे। भोट-देशीय विद्वान् लो-च्-व कहे जाते हैं। इस प्रकार भोट और संस्कृत दोनों भाषाओं का गंभीर ज्ञान एकत्रित हो जाने से भोटिया अनुवाद संसार में अद्वितीय हैं।

पुत्र चुङ्-मो स्वयं भिक्षु हो गया। वस्तुतः यह अंधी भक्ति मर्यादा को पार कर रही थी। इस ने अयोग्य व्यक्तियों को भिक्षु बनने की ओर प्रेरित किया। फिर यह सारा दोष राजा और उस के स्नेहास्पद धर्म पर लगने लगा। गूलङ्-दर्-म (जो राजपद से वंचित कर दिया गया था) और बौद्धधर्म-विरोधी अमात्यों को यह अच्छा मौका हाथ लगा; खबर उड़ाई गई कि राजा के आदर-भाजन भिक्षु (बन्-दे) योन्-तन्-दूपल् का महारानी ङङ्-छुल्-म के साथ अनुचित संबंध है। अंत में षड्यंत्रियों ने योन्-तन्-दूपल् को मार डाला, जिस पर रानी ने आत्महत्या कर ली। स्वयं सम्राट् भी लोह-पत्ती वर्ष (८५१ ई०) में गूलङ्-दर्-म के कृपापात्र दूपस्-र्ग्यल्-तो-रे और (चो-रे) लेगस्-सूम द्वारा मार डाला गया। इस प्रकार १६२ वर्ष (५८०—७४२ ई०) तक सत्कृत और संमानित हो कर, फिर १०० वर्ष (७४२—८४१ ई०) तक असाधारण भक्ति का भाजन रह कर, अब बौद्धधर्म ने भोट देश में बुरे दिन देखे।

गूलङ्-दर्-म (८४१-२ ई०)—भाई की हत्या करा कर गूलङ्-दर्-म सिंहासन पर बैठा। चीनी इतिहास-लेखक[१] दर्-म के बारे में लिखते हैं—वह शराब का प्रेमी, खेलों का शौकीन, स्त्री-लंपट, क्रूर, अत्याचारी और कृतघ्न था। यह सब होते हुए भी दर्-म को बौद्धधर्म पर अत्याचार करने का मौका न मिला होता यदि बौद्ध-भिक्षुओं ने प्रभुत्व और मान की लिप्सा से प्रेरित हो अपने प्रभाव से अनुचित लाभ उठाना न शुरू किया होता, और रल्-प-चन बौद्धधर्म के प्रति मर्यादित भक्ति दिखलाते हुए अपने राजा के कर्तव्य का भी ध्यान रखता। गूलङ्-दर्-म ने अपने भाई के हत्यारे दूपस्-र्ग्यल् को मंत्री का पद प्रदान किया। सभी ऊँचे पदों पर बौद्ध-विरोधियों की नियुक्ति हुई। अनुवादकों के रहने के मकान और पाठशालायें नष्ट कर दी गईं। उस ने आज्ञा दी कि भिक्षु अपने धार्मिक जीवन को छोड़ गृहस्थ बन जाये। जो भिक्षु-वेष को छोड़ने के लिए तैयार न थे, उन्हें धनुष-बाण दे कर शिकारी बनने के लिए मजबूर किया गया। आज्ञा उल्लंघन करने वाले कितने ही भिक्षु तलवार के घाट उतारे गए।

---

[१] 'थङ्-शु', 'एंटिक्विटीज़ अव् इंडियन टिबेट,' भाग २, पृ० ९२ से उद्धृत।

जो-खड् के मंदिर से हटा कर बुद्ध-मूर्ति बालू के नीचे दबा दी गई। मंदिर का द्वार बंद कर के उस पर शराब पीते हुए भिक्षुओं की तसवीरें अंकित कर दी गईं। ल्हासा के र-मो-छे मंदिर और ब्सम्-यस् विहार के द्वार भी इसी प्रकार बंद कर दिए गए। उस वक्त अधिकांश पुस्तकें ल्हासा की चट्टानों में छिपा दी गई थीं। (अङ्) तिङ्-ङे-ऽजिन्-ब्सङ्-पो और (मं) रिन्-छेन्-मृछोग् मार डाले गए। बाक़ी पंडित और लो-च-व देश छोड़ कर भाग गए। अत्याचार के मारे बौद्ध भिक्षुओं का रहना असंभव हो गया। उस समय (ग्चङ्)-रब्-गसल्, (फो-ओङ्-प, ग्यो) दुगे-ऽब्युङ्, और (स्तोद्- लुङ्-प-स्मर्) शाक्यमुनि तीन भिक्षु दूपल्-छु-बो-रि के पहाड़ मे एकांत जीवन बिता रहे थे। उन्हों ने ल्हिय-र-ब्येद्-प भिक्षु को आते देखा। पूछने पर गूलङ्- दर्-म के अत्याचार की बात मालूम हुई। इस पर वह तीनों भिक्षु अपने 'विनय' ग्रंथों को समेट कर, एक खच्चर पर लाद कर, मृङऽ-रिस् (मानसरोवर) की ओर भाग कर चले गए। वहाँ से वह तुर्किस्तान (होर्) पहुँचे। वहाँ उन्हों ने बौद्ध-धर्म का प्रचार करना चाहा, किंतु भाषा और जाति के भेद के कारण वह उस में सफल न हो सके और वहाँ से दक्षिण को अम्-दो चले गए।

बौद्धों ने ग़लती की थी, और उस का दंड मिलना भी जरूरी था। तो भी इन पौने तीन सौ वर्षों में बौद्धधर्म ने भोट देश की बहुत सेवा की थी। यह संभव नहीं था कि इस थोड़े से अपराध के लिए वह मिटा दिया जाता। अंत में प्रतिक्रिया का रुख़ बदला। लोग वस्तुतः वर्तमान को ही पूरी तरह जानते हैं। अब बौद्ध अधिकारियों के गुण-दोष तो बीती हुई वस्तु हो गए थे, लेकिन लोग दर्-म के वर्तमान अत्याचारों को देख रहे थे। अब वह उस से ऊबते जा रहे थे। उस समय (ल्ह-लुङ) दूपल्-ग्यि-र्दो-र्जे नामक एक भिक्षु येर्-पऽि-ल्हस्बिङ्-पो पार्वत्य स्थान में ध्यान-रत था। उस ने जब यह सब बातें सुनीं तो वह अपने को रोक न सका। उस ने भीतर से सफ़ेद और बाहर से काली एक पोस्तीन धारण की; हाथ में लोहे के धनुष-बाण लिए, और फिर वह अपने सफ़ेद घोड़े को स्याही से काला कर, उस पर सवार हो ल्हासा की ओर चल पड़ा। राजा उस समय जो-खङ् के पास स्थापित महास्तंभ (र्दो-रिङ्) पर खुदे लेख

को पढ़ रहा था। सवार ने घोड़े से उतर कर वंदना करने के बहाने से तीर का ऐसा निशाना मारा, कि वह जा कर ठीक राजा के कलेजे में लगा। अब वह इस घोष के साथ कि यदि किसी पापी राजा को मारना हो, तो ऐसे मारना चाहिए, घोड़े पर सवार हो कर निकल भागा। ल्हासा में शोर मच गया। लेकिन जनता तो पहले ही राजा से विरक्त हो चुकी थी। किसी ने उसे न पकड़ पाया। द्पल्-र्दो-र्जे ने एक जलाशय में जा कर घोड़े की स्याही धो, अपनी पोस्तीन का सफ़ेद हिस्सा ऊपर कर के चलता बना। अपने स्थान पर पहुँच वह 'अभिधर्मसमुच्चय' (असंग), 'प्रभावती'(विनय-टीका), और 'कर्मशतक' की पोथियों को ले कर खम्स् की ओर चला गया। मरते वक़्त दर्-म ने यह शब्द कहे थे—"क्यों न मैं तीन वर्ष पूर्व मारा गया, जिस से कि मैं इतने पाप और अत्याचार से बच जाता, या तीन वर्ष बाद मारा जाता जिस में कि मैं बौद्धधर्म को देश से मिटा सकता।"[1]

ऽोद्-स्रुङ्स् (८४२-९०५ ई०)—दर्-म के मरने के बाद उस की बड़ी रानी ने गर्भवती होने का बहाना किया, और जब ढूँढ़ने पर उसे एक लड़का मिला, तो मंत्रियों को दिखला कर कहा—'यह मेरा लड़का है'। दाँतवाले बच्चे को देखकर मंत्री जाल समझ गए, और बोले—अच्छा यह जावे अपनी माँ की आज्ञा-पालन करे। इस पर माँ का आज्ञा-पालक (युम्-ब्र्तन्) ही उस का नाम पड़ गया। छोटी रानी का लड़का ऽोद्-स्रुङ्स् (काश्यप) गद्दी का मालिक हुआ। यद्यपि यह और इस के पुत्र द्पल्-ऽखोर्-व-चन् (९०५-२३ ई०) ने दर्-म की भूल को नहीं दुहराया, किंतु अब राजशक्ति क्षीण हो गई थी। इसी समय राज्य के कितने ही भाग स्वतंत्र हो गए।

द्पल्-ह्यु-योर्-र से अपनी पुस्तकें खच्चर पर लाद कर भागे हुए तीन भिक्षुओं के बारे में मैं पहले कह चुका हूँ। जब वह दक्षिण अम्-दो में रहते थे, तो पता पा कर द्गोङ्स्-क बस्ती के रहने वाले एक तरुण ने उन के पास आ कर प्रव्रज्या पाने की प्रार्थना की। इस पर भिक्षुओं ने उसे 'विनय' की एक

---

1 'ऐंटिक्विटीज़ अव् इंडियन टिबेट', भाग २, पृष्ठ ९३३।

पुस्तक पढ़ने को दो, और कहा, यदि यह बातें तुम्हें स्वीकार हों, तो हम तुम्हें श्रामणेर बनायेंगे। तरुण ने पढ़ कर इस की प्रार्थना की। इस पर वह श्रामणेर बनाया गया, और नाम (दुगोङ्स्-प) रब्-ग्सल् (प्रकाश) पड़ा। पीछे उस ने भिक्षु बनाए जाने की प्रार्थना की, किंतु वहाँ संघ का कोरम पूरा करने के लिए पाँच भिक्षु न थे, कोरम के लिए और दो भिक्षुओं की तलाश करते हुए उसे (ल्ह-लुङ) दूपल् - दों - र्जे मिला। प्रार्थना किए जाने पर उस ने कहा, मैं ने राजा को मारा है, इस लिए 'पाराजिक' अपराध का अपराधी होने से अब मैं भिक्षु नहीं रहा। फिर ढूँढने पर उसे क्ये-बङ् और ग्यि-वङ् दो ह्व-शङ् (चीनी भिक्षु) मिले। इस प्रकार पंच-गण संघ बना कर उस ने भिक्षु की दीक्षा पाई। यह रब्-ग्सल् आचार्य शांतरक्षित की परंपरा का आगे चलाने-वाला पुरुष हुआ। पीछे द्वुस् प्रदेश के पाँच पुरुष (क्लु-मेस-) .छुल्-ख्रिमस्, शेस्-रब्-ल्दिङ्-ये-शेस्-योन-तन, (रग्-शि) .छुल्-ख्रिमस्-ऽब्युङ्-ग्नस्, (वे) .छुल्-ख्रिमस्-ब्लो-ग्रोस् और (सुम्-प) ये-शेस्-ब्लो; तथा ग्चङ् प्रदेश के पाँच पुरुष—गुर्-मो-(रब्-ख-प) ब्लो-स्तोन, दों-र्जे द्वङ्-स्युग्, (शब्-सुगो-ल्ङऽि-छोङ्-ब्चुन) शेस्-रब्-सेङ्-गे, (मङऽ-रिस्) ऽोद-ब्र्ग्यंद्, और (फो-ख्रोङ्-) उ-प-दे-द्कर्-पो—यह दश व्यक्ति आ कर भिक्षु रब्-ग्सल् के शिष्य हुए। इन्हीं दस भिक्षुओं ने लौट कर मध्य तिब्बत में फिर से प्रचार करना शुरू किया। ञिङ्-म-प संप्रदाय के सभी मठ इन्हीं की परंपरा से संबंध रखते हैं।

३—दीपंकर-युग (१०४२-११०२)

स्रोङ्-ब्चुन के वंश ने लगातार पौने तीन सौ वर्ष तक अपने विस्तृत साम्राज्य को क़ायम रक्खा। धर्म की असाधारण भक्ति रखते हुए भी इन में सात पीढ़ियों तक शासक और योद्धा की योग्यता बनी रही। ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। भारत में गुप्त-सम्राटों का वंश वीर पैदा करने में मशहूर रहा है, किंतु वह भी दो सौ वर्ष तक ही चला। मुग़ल बादशाह भी पाँच पीढ़ियों तक ही प्रबल रहे। किंतु दर्-म के बाद पतन शीघ्रता से होने लगा। दूपल्-

ऽखोर्-व-चन् (मृ०९८३ई०) तक जो कुछ बचा था वह भी उस के बाद जाता रहा। तिब्बत खास ही अनेक टुकड़ों में बँट गया। क्रांति के कारण ऽखोर्-व-चन् का दूसरा पुत्र ख्रि-स्क्यिद्-ल्दे-त्रि-म-म्गोन् ल्हासा छोड़ने पर मजबूर हुआ। वह एक सौ सवारों के साथ पश्चिमी तिब्बत (मृङऽ-रिस्) की ओर चला गया। वहाँ अपने विश्वास-पात्र सेवकों की सहायता से उस ने अपने लिए स्थान बना लिया। अश्व-वर्ष (९८२ ई०) में उस ने र-ल में लाल-महल बनवाया। मेष-वर्ष (९८३ ई०) में वे-शी-ग्यें-रि नामक महल बनवाया। इसी वक्त स्पुद्-रङ्स् के शासक द्गे-ब्शेस्-ब्चुन ने उसे अपनी राजधानी में बुलाया और अपनी कन्या ऽत्रो-स-ऽखोर्-स्क्योङ् के साथ अपना राज्य उसे प्रदान किया। त्रि-म-म्गोन् ने फिर मृङऽ-रिस्-स्कोर-गसुम् (लदाख, गूगे, और स्पु-रङ्स्) को अपने अधिकार में कर के एक स्वतंत्र राज्य क़ायम किया। अंत में राज्य को इस ने अपने तीनों पुत्रों—द्पल्-गि-ल्दे (लदाख), ब्क्र-शिस्-ल्दे-म्गोन् (स्पु-रङ्स्) और ल्दे-ग्चुग्-म्गोन् (शङ्-शुङ या गूगे) में बाँट दिया। ल्दे-ग्चुग्-म्गोन् का ज्येष्ठ पुत्र ऽखोर्-ल्दे राज्य को अपने छोटे भाई स्रोङ्-ल्दे के हाथ में सौंप कर स्वयं अपने दोनों पुत्रों, नागराज और देवराज के साथ भिक्षु हो गया।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम पाद में तिब्बत में बौद्धधर्म में बहुत से विकार पैदा हो गए थे। भिक्षुओं ने धर्म-ग्रंथों का पढ़ना छोड़ दिया था। वह वर्षावास के तीन मास तक ही भिक्षु-आचार का पालन करते थे, उस के बाद उस की परवा नहीं करते थे। तांत्रिक लोग मद्य और व्यभिचार को ही परम धर्मचर्या मानते थे। मठों के अधिकारी चमकीली वेष-भूषा पहिन कर, अपने को स्थविर और अर्हत् प्रकट करते फिरते थे। ऽखोर्-ल्दे (भिक्षु बनने पर इस का नाम ये-शेस्-ओद अर्थात् ज्ञानप्रभ पड़ा) ने स्वयं धर्म-ग्रंथों को पढ़ा था, और वह एक विचारशील व्यक्ति था। इस का तो इसी से पता लगता है, कि तंत्रों के बुद्ध-वचन होने में उसे बहुत संदेह था।[1] वह अच्छी तरह समझता था,

[1] 'बु-स्तोन्', भाग २, पृष्ठ २१२।

कि बौद्धधर्म ही उस के पूर्वजों की एक चिरस्थायी कृति है। धर्म के इस ह्रास को हटाने के लिए उस ने सब से जरूरी बात समझी—धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन। इस के लिए उस ने रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो (९५८-१०५५ ई०), लेग्स्पडिशेस्-रब् आदि इक्कीस तरुणों को चुन कर कश्मीर पढ़ने के लिए भेजा। मानसरोवर जैसी ठंडी जगह के रहने वाले इन नौजवानों के लिए कश्मीर भी गर्म था। अंत में दो को छोड़ कर बाक़ी सब वहाँ बीमारी से मर गए। रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो ने लौट कर पंडित श्रद्धाकरवर्मा, पद्माकरगुप्त, बुद्ध श्रीशांत, बुद्धपाल, और कमलगुप्त आदि की सहायता से कितने ही दर्शन और तंत्र-ग्रंथों के भोट भाषा में अनुवाद किए। 'हस्तवाल-प्रकरण' (आर्यदेव), 'अभिसमयालंकारालोक' (हरिभद्र), 'वैद्यक अष्टांग-हृदसंहिता' (नागार्जुन), 'चतुर्विपर्यय-कथा' (मातृचेट) 'सप्तगुणपरिवर्णन-कथा' (वसुबंधु), 'सुमागधावदान' आदि ग्रंथों के इन्हीं ने अनुवाद किए। पीछे दीपंकर श्रीज्ञान (९८२-१०५४ ई०) के तिब्बत पहुँचने पर और भी कितने ही ग्रंथों के भाषांतर करने मे सहायता की। रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो ने गू-गे (शुङ्-शुङ्) स्पि-ति और लदाख में कई सुंदर मंदिर बनवाए, जिन में कई[1] अब भी मौजूद हैं, और उन में उस समय की भारतीय चित्रकला के सुंदर नमूने पाए जाते हैं।

राजभिक्षु ज्ञानप्रभ ने जब देखा, कि उन के भेजे इक्कीस तरुणों में उन्नीस कश्मीर से जीवित नहीं लौट सके, तो उन्हों ने सोचा कि यहाँ से भारत मे विद्यार्थियों को भेजने के स्थान पर यही अच्छा होगा, कि भारत से ही किसी अच्छे पंडित को यहाँ बुलाया जावे, जो यहाँ आ कर सुधार का काम करे। उन्हें यह भी मालूम हुआ, कि विक्रमशिला महाविहार में ऐसे एक पंडित भिक्षु दीपंकर श्रीज्ञान हैं। उन के बुलाने के लिए आदमी भेजा गया, किंतु वह न आए।

---

[1] लदाख में सुम्-दा और अल्-ची के मंदिर, और स्पि-ति का ल्ह-लुङ् मंदिर इन्हीं में से है। इन में सारे ही चित्र भारतीय चित्रकारों के बनाए हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी की चित्रकला के यह सुंदर कोश हैं। खेद है कि रक्षा का कोई प्रबंध न होने से यह नष्ट होते जा रहे हैं।

दूसरी बार फिर दूत भेजने की तैयारी हुई। इस के लिए सुवर्ण सोने का संग्रह करने जब वह अपने सीमांत प्रदेश में गए हुए थे, उसी समय पड़ोसी राजा ने उन्हें पकड़ लिया। उन के उत्तराधिकारी ब्यङ्-छुब्-ओद् (बोधिप्रभ) ने चाहा, कि धन दे कर उन्हें छुड़ा लें, किंतु ज्ञानप्रभ ने कहा, यह धन भारत में किसी पंडित के बुलाने में खर्च किया जाय।

ग्यारहवीं शताब्दी में विक्रमशिला विहार (वर्तमान सुल्तानगंज, ज़िला, भागलपुर) उत्तरी भारत में एक बड़ा ही विशाल विद्याकेंद्र था। युवराज होने की अवस्था में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य चंपा का प्रदेशाधिकारी था। उस वक़ सुल्तानगंज की दोनों पहाड़ी टेकरियों पर उस ने बुद्ध मंदिर बनवाए थे, और उसी के नाम पर यह स्थान विक्रमशिला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पीछे पालवंशीय महाराज धर्मपाल (७६९-८०९ ई०) ने गंगा-तटवर्ती इस मनोरम स्थान पर एक सुंदर विहार बनवाया, यही विक्रमशिला महाविहार हुआ। इस विहार के कुछ ही दूर दक्षिण में एक सामंत राजा की राजधानी थी, जिस के यहाँ दीपंकर श्रीज्ञान का जन्म हुआ था। नालंदा, राजगृह, विक्रमशिला, वज्रासन (बोधगया) ही नहीं बल्कि सुदूर सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) तक जा कर दीपंकर ने विद्याध्ययन किया। पीछे वह विक्रमशिला के आठ महापंडितों में एक हो कर वहीं अध्यापन का कार्य करने लगे। यद्यपि पहली बार राजभिक्षु ज्ञानप्रभ के निमंत्रण को उन्हों ने अस्वीकार कर दिया था, किंतु जब राजभिक्षु बोधिप्रभ के भेजे दूतों के मुख से उन्हों ने ज्ञानप्रभ के महान् त्याग की बात सुनी, तो चलने के लिए उन्हों ने अपनी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार १०४२ ई० (जल-अश्व वर्ष) में वह मङ-ऽ-रिस् पहुँचे। भोट देशवासियों ने उन का बड़ा स्वागत किया। पहले मानसरोवर के पश्चिम में अवस्थित थो-लिङ् (शङ्-शुङ्) मठ में रहे। यहाँ उन्हों ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'बोधिपथप्रदीप' लिखा। १०४४ में वह सुपु-रङ्स् गए। यहीं उन्हें (ऽब्रोम्-स्तोन्) ग्र्यल्-बऽि-ऽब्युङ्-गूनस् (१००३-६४ ई०) मिला। यह उन का प्रधान शिष्य था, और तब से अंत तक यह बराबर अपने गुरु के साथ रहा। दीपंकर (अतिशा) के अनुयायी (ऽब्रोम-स्तोन् की शिष्यपरंपरा वाले) क्ऽ-दम्-प के नाम से प्रसिद्ध हुए। चोङ्-ख-प (१३५७-

१४१९ ई०) का भी इसी बूक्-दम्-प संप्रदाय से संबंध था और इसी लिए उस के अनुयायी दूगे-लुगस्-प अपने को नवीन बूक्-दम्-प भी कहते हैं।

दीपंकर श्रीज्ञान ने अपने जीवन के अंतिम तेरह वर्ष तिब्बत देश में धार्मिक सुधार और ग्रंथानुवाद में बिताए। मृङ-उरिस् से वह गूचङ् और दूबुस् प्रदेशों में गए। १०४७ ई० में वह बूसम्-यस् पहुँचे। उस वक्त वहाँ के पुस्तकभंडार को देख कर वह दंग रह गए। वहाँ उन्हें कुछ ऐसी पुस्तकें भी देखने को मिलीं जो भारत के बड़े बड़े विद्यालयों में भी दुर्लभ थीं। १०५० ई० में वह येर्-प गए, और १०५१ ई० (लोह-शश वर्ष) में उन्हों ने 'कालचक्र' पर अपनी टीका लिखी। १०५४ ई० में ७३ वर्ष की अवस्था, में ल्हासा से आधे दिन के रास्ते पर सूञे-थङ् स्थान में, उन का शरीरांत हुआ।

अनुवाद करने में उन के प्रधान सहायक (नग्-छो) छुल्-खिम्स्-ग्र्यल् व, रिन्-छिन्-बूस्-ङ्-पो, दूगे-वडि-बूलो-ग्रोस् और शाक्य—बूलो-ग्रोस् थे। इन के अनुवादित और संशोधित ग्रंथों की संख्या सैकड़ों है। महान् दार्शनिक भाव्य (भावविवेक) के ग्रंथ 'मध्यमकरत्नप्रदीप' और उस की व्याख्या को इन्हों ने ही (ग्यें) चोन्-सेङ् और नग्-छो के दुभाषिया होते हुए, अनुवादित किया था।

पंडित सोमनाथ (१०२७ ई०)। दीपंकर श्रीज्ञान के भोट पहुँचने से कुछ पूर्व कश्मीरी पंडित सोमनाथ भोट गए। (ग्यें-चो) सु-वडि-ऊोद्-सेर की
ल
सहायता से इन्हों ने 'कालचक्र ज्योतिष' का भोट भाषा में अनुवाद किया, और तभी से भोट देश में बृहस्पति चक्र के ६० संवत्सरों का नया क्रम जारी हुआ। साठ संवत्सरों के एक चक्र को भोट भाषा में रब्-ऽब्युङ् (प्रभव) कहते हैं। यह प्रभव हमारे यहाँ के भी षष्ठी संवत्सर-चक्र का आदिम संवत्सर है। लक्ष्मीकर, दानश्री चंद्रराहुल, सोमनाथ के साथ ही भोट देश गए थे।[1]

दीपंकर श्रीज्ञान के विद्यागुरु सिद्ध महापंडित अवधूतिपा (अद्वयवज्र

---

१ 'ऽबुग्-प-छोस्-ऽब्युङ्', पृष्ठ १५२क, १९८ग, २५१ख।

या मैत्रीपा भी) थे। इन्हीं के शिष्य वैशाली (बसाढ़, जि० मुजफ्फरपुर) के रहने वाले कायस्थ पंडित गयाधर थे। यह (ऽब्रोग्-मि) शाक्य ये-शेस् (मृत्यु १०७४ ई०) के निमंत्रण पर भोट गए। और पाँच वर्ष रह कर इन्हों ने बहुत से तंत्र-ग्रंथों के भोट भाषा में अनुवाद किए। चलते वक्त ऽब्रोग्-मि ने इन्हें पाँच सौ तोला सोना अर्पित किया। यह स्वयं भी हिंदी भाषा के कवि थे, इन के पुत्र तिब्रूपा एक पहुँचे हुए सिद्ध समझे जाते थे। पंडित गयाधर ने (ग्यिं-जो) स-वडि-ऊेद्-सर् के साथ 'बुद्धकपाल-तंत्र' का अनुवाद किया था, और (ऽगोस् ल्
खुग्-प) ल्ह-ब्चस् के साथ 'वज्रडाकतंत्र'[1] का।

ज्ञानप्रभ के समय में ही लो-च-व पद्मरुचि ने स्मृतिज्ञानकीर्ति और सूक्ष्म-दीर्घ दो भारतीय पंडितों को अनुवाद के कार्य के लिए बुलाया। लो-च-व हैजे से नेपाल में मर गया, और यह लोग भोट में पहुँच गए। इन्हें उस समय भाषा भी न आती थी। पंडित सूक्ष्मदीर्घ तो (रोङ्-प) छोस्-ब्सङ् के पास रहने लगे, किंतु स्मृतिज्ञानकीर्ति ने किसी का आश्रय ढूँढने की अपेक्षा भेड़ की चरवाही पसंद की। यह मालूम नहीं, कितने वर्षों तक तिब्बत के खानाबदोश ब्यङ्-प की भाँति इन्हों ने चँवरी के बालों के काले तंबुओं में रह, ते-नग् में चरवाही का जीवन व्यतीत किया। स्मृतिज्ञान, मालूम होता है, कोई मस्त मौला ही थे। इस भेड़ की चरवाही में एक फायदा जरूर हुआ, वह यह कि उन्हें भोट भाषा का सुंदर अभ्यास हो गया। स्मृतिज्ञान और विभूतिचंद्र (१२०४ ई०) जैसे बहुत थोड़े ही भारतीय पंडित हैं, जिन्हों ने बिना लो-च-व की सहायता के भारतीय ग्रंथों का भोट भाषा में अनुवाद किया हो। पीछे (स्प्यल्-से-चव्) ब्सोद्-नम्स्-र्ग्यल्-म्छन् के निमंत्रण पर स्मन-लुङ् में जा कर उसे इन्हों ने बौद्ध ग्रंथों को पढ़ाया। फिर खम्स् (पूर्वीय भोट) में जा कर ऽदन्-क्लोङ्-थङ् में अभिधर्मकोश के अध्ययन के लिए एक विद्यालय स्थापित

---

[1] इस ग्रंथ की मूल संस्कृत प्रति ताल-पत्र पर लेखक को १९३० ई० में श-लु विहार से प्राप्त हुई।

किया। इन्हों ने 'चतुष्पीठ-टीका', 'वचनमुख' आदि कितने ही अपने लिखे ग्रंथों का भोट भाषा में उल्था किया।

शि-व-ओद् (ज्ञानप्रभ के भाई), राजा ल्होड्-ल्दे के पुत्र ल्ह-ल्दे थे। इन के तीन पुत्रों में बड़ा ओद्-ल्दे राजा हुआ, और ब्यङ्-छुप्-ओद् और शि-व-ओद् दोनों छोटे लड़के भिक्षु हो गए। दीपंकर श्रीज्ञान को बुला कर जिस प्रकार ब्यङ्-छुप्-ओद् ने धर्मप्रचार कराया, यह पहले लिखा जा चुका है। राजा ओद्-ल्दे ने पंडित सुनयश्री को बुला कर कितने ही ग्रंथों के अनुवाद कराए। शि-व-ओद् (शांतिप्रभ) स्वयं अच्छा विद्वान था। इस ने जहाँ सुजन श्रीज्ञान, मंत्रकलश और गुणाकरभद्र से कितनी ही पुस्तकों के अनुवाद कराए वहाँ स्वयं आचार्य शांतरक्षित के गंभीर दार्शनिक ग्रंथ 'तत्वसंग्रह' का अनुवाद किया।

चे-ल्दे। ओद्-ल्दे के बाद उस का पुत्र चे-ल्दे मानसरोवर प्रांत (शङ्-शुङ् और मङ्-युल्-रङ्स्) का शासक हुआ। १०७६ ई० में इस ने एक अच्छा विद्यालय स्थापित किया, और (डोंग्) ब्लो-ल्दन्-शेस्-रब् (१०५९-११०८) को उसी साल कश्मीर पढ़ने के लिए भेजा। १०९२ ई० तक डोंग् ने कश्मीर में रह कर पंडित परहितभद्र और भव्यराज से न्याय, तथा ब्राह्मण सज्जन और अमरगोमी आदि से योगाचार के कितने ही ग्रंथों का अध्ययन किया। पंडित भव्यराज अनुपमनगर (प्रवरपुर = श्रीनगर ?) के पूर्व और चक्रधरपुर सिद्धस्थान में रहते थे। यहीं डोंग् ने धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध न्याय-ग्रंथ 'प्रमाणवार्तिक'[1] का फिर से भोट भाषा में अनुवाद किया। पंडित परहितभद्र की सहायता से इस ने धर्मकीर्ति के 'प्रमाणविनिश्चय' और 'न्यायबिंदु' के अनुवाद भी किए। चे-ल्दे के बाद उस के पुत्र राजा द्वङ्-ल्दे और पौत्र राजा ब्क्र-शिस्-ल्दे भी डोंग् के काम में सहायता करते रहे। कश्मीर में सत्रह वर्ष रह कर डोंग् ने भोट में लौट कर चौदह वर्षों तक अपना काम किया। यहाँ

---

[1] प्रथम बार इस का अनुवाद दीपंकर के साथी सुभूतिश्रीशांति और द्गे-बडि-ब्लो-ग्रोस् ने किया था।

रहते हुए उस ने पंडित अतुलदास, सुमतिकीर्ति, अमरचंद्र और कुमारकलश के साथ अनुवाद का काम किया। प्रसिद्ध 'मंजुश्रीमूलकल्प' का इस ने पंडित कुमारकलश के साथ मिल कर उल्था किया था।

फ-दम्-प-सङ्स्-र्यस् (मृ० १११८ ई०)। १०९२ ई० में यह भारतीय पंडित-सिद्ध भोट देश में आया। यह नेपाल के रास्ते म-नम हो कर गुलङ्-सूकोर पहुँचा था। यहाँ रहते हुए इस ने कुछ ग्रंथों के अनुवाद में सहायता पहुँचाई। यह पूरा परिव्राजक था। ११०१ ई० में यह चीन गया, १११३ ई० में फिर तिब्बत आया। इस ने शि-ब्येद् संप्रदाय की स्थापना की, जिस का कि एक समय भोट देश में अच्छा प्रभाव था।

इसी काल में एक और विद्वान लो-च़्-व हुआ, जिस का नाम (प-छप्) ञि-म-ग्रग्स् (रविकीर्ति) है। इस का जन्म १०५५ ई० में हुआ था, अर्थात् उसी वर्ष जिस वर्ष कि महान् लो-च़्-व रिन्-छेन् ब्सङ्-पो का देहांत हुआ। इस ने कश्मीर में आ कर तेईस वर्ष तक अध्ययन किया। इस ने (आर्यदेव के), 'चतुःशतक शास्त्र', (चंद्रकीर्ति के) 'मध्यमकावतार-भाष्य' (पूर्णवर्द्धन की) अभिधर्मकोशटीका 'लक्षणानुसारिणी', (चंद्रकीर्ति की) मूलमध्यक-वृत्ति 'प्रसन्नपदा' जैसे गंभीर दार्शनिक ग्रंथों के अनुवाद से अपनी मातृभाषा के कोश को पूर्ण किया। कनकवर्मा, तिलककलश आदि पंडित इस के सहायक थे।

(मर्-प) छोस्-क्यि-ब्लो-ग्रोस्। यह सिद्ध नारोपा (नाडपाद, मृ० १०४० ई०) का शिष्य था, और तीन बार भारत में आ कर रहा था। इस ने अनुवाद का काम कम किया, किंतु यह और मि-ला-रस्-प (१०४०-११२३ ई०) जैसे इस के शिष्य अपनी विचित्र चर्या से तिब्बत में चौरासी सिद्धों के यथार्थ प्रतिनिधि थे। मि-ला-रस्-प भोट देश का सर्वोत्तम कवि ही नहीं था, बल्कि इस के निस्पृह अकृत्रिम जीवन ने इन आठ शताब्दियों में वहाँ बहुतों के जीवन में भारी प्रभाव डाला है। *मर्-प, मि-ला की परंपरा वाले लोग* द्कर्-र्ग्युद्-प कहे जाते हैं। भोट देश के ड्रुग्स्-पो, ड्रि-गोङ्-प, फग्-मुग्-प, ऽब्रुग्-प, स्तग्-लुङ्-प और स्कर्-म-प इसी द्कर्-र्ग्युद्-प संप्रदाय की शाखाएँ हैं। कर्-म (स्कर्-म) संघराज सकर्-म-बक्-सि-छोस्-ऽजिन् (१२०४-८३) अपने सिद्धत्व के

कारण मंगोल-सम्राट् का गुरु हुआ था। फग्-मुग्-प और ऽत्रि-गोङ्-प ने कितने ही वर्षों तक मध्य भोट पर शासन किया।

४—स-स्क्य-युग (११०२-१३७६ ई०)

(*ऽखोन्*) *द्को-र्ग्यल्* (१०३४-११०२ ई०) नाम के एक गृहस्थ धर्माचार्य ने, *ग्चङ्* (*चङ्*) प्रदेश में १०७३ ई० में स-स्क्य नामक विहार की स्थापना की। यद्यपि इस विहार का आरंभ बहुत छोटे मे हुआ, किंतु इस ने आगे चल कर बौद्धधर्म की बड़ी सेवा की। इस के संघराजों का प्रभाव भोट देश से बाहर चीन और मंगोलिया तक पड़ा। चंगेजखां (चिङ्-हिर्-हान्) के शासन-काल में १२२२ ई० में यहीं के संघराज ने सर्व प्रथम मंगोलिया में बौद्धधर्म का प्रचार किया।

(ऽखोन्) द्कोन-र्ग्यल् ने *व-रि-लो-च्-व* (मृ० ११११ ई०) को अपना उत्तराधिकारी चुना। व-रि कितने ही समय तक भारत में जा कर वज्रासन (बोधगया) के आचार्य अभयाकरगुप्त के पास रहा था। अभयाकरगुप्त का जन्म झारखंड (वैद्यनाथ के आसपास का प्रदेश) मे क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से हुआ था[१]। यह शास्त्रों के अच्छे पंडित थे। पीछे इन्हों ने अवधूतिपा के शिष्य सौरिपा से सिद्ध-चर्या की दीक्षा ली। मगधेश्वर रामपाल (१०५७- ११०२) के यह गुरु थे। नालंदा और विक्रमशिला दोनों ही विश्वविद्यालयों के यह महापंडित माने जाते थे। इन का देहांत ११२५ ई० में हुआ।

व-रि ने अपना उत्तराधिकारी, मठ के संस्थापक द्कोन-र्ग्यल् के पुत्र *कुन्-द्गऽ-स्ञिङ्-पो* (१०९२-११५८) को चुना। उस के बाद उस के पुत्र *मगस्-प-र्ग्यल्-म्छन्* (११४७-१२१६ ई०) विहाराधिपति हुए। यह अच्छे विद्वान् थे। इन्हों ने दिङ्नाग के 'न्यायप्रवेश' और 'चंडमहारोपणतंत्र' आदि ग्रंथों के अनुवाद किए।

(स्रो-फु) *ब्यम्स्-प-द्पल्* (जन्म ११७३ ई०) इसी काल में हुआ था। यह

---

[१] 'रिन्-छेन्-ऽब्युङ्-ग्नस्-गृतम', पृ० ४७ ख।

काशिराज जयचंद के दीक्षा-गुरु मित्रयोगी[1] (जगन्मित्रानंद) को ११९८ ई० में भोट ले गया। मित्रयोगी की 'चतुरंगधर्मचर्या' का इस ने अनुवाद किया। १२०० ई० में कश्मीरी पंडित बुद्धश्री को बुला कर उन के साथ इस ने अभिसमयालंकार की टीका 'प्रज्ञाप्रदीप' का अनुवाद किया। इसी के निमंत्रण पर विक्रम-शिला के अंतिम प्रधान-स्थविर शाक्यश्रीभद्र भोट देश में आए।

शाक्यश्रीभद्र—इन का जन्म कश्मीर में ११२७ ई० में हुआ था। बोधगया, नालंदा, विक्रमशिला उस समय सारे बौद्धजगत् के जीवित केंद्र थे। इसी लिए यह भी मगध की ओर आए। सुखश्री इन के दीक्षा गुरु थे। रविगुप्त, चंद्रगुप्त, विख्यातदेव (छोटे वज्रासनीय), विनयश्री, अभयकीर्ति और रविश्रीज्ञान इन के विद्यागुरु थे। अपने समय के यह महा-विद्वान् थे—यह तो इसी से मालूम होता है, कि यह मगध-नरेश के गुरु तथा विक्रमशिला महाविहार के प्रधान नायक थे। मुहम्मद-बिन्-बख्तियार ने जब नालंदा और विक्रमशिला को ध्वस्त कर दिया, तो यह जगत्तला[2] (बंगाल) चले गए। वहाँ कुछ दिन रह कर, और संभवतः उस के भी ध्वस्त होने पर जब यह जगत्तला के पंडित विभूतिचंद्र, तथा दानशील, संघश्री (नेपाली), सुगतश्री आदि नौ पंडितों के साथ नेपाल में थे, तो वहीं इन्हें ऽख्रो-फु लो-च-व मिला। उस की प्रार्थना पर यह १२०० ई० में भोट देश में आ कर, दस वर्ष तक रहे। इन्हों ने पुस्तक-अनुवाद का काम नहीं किया; और इन के ग्रंथ भी एकाध ही

---

[1] इन का जन्म राढ (पश्चिमी बंगाल) देश का था। सिद्ध तैलोपा के शिष्य ललितवज्र से इन्हों ने सिद्धचर्या की दीक्षा ली थी। पीछे उडन्तपुरी विहार के प्रधान हुए। काशीश्वर महाराज जयचंद इन के शिष्य थे ('ऽपुग्-प-छोस्-ऽव्युङ्', पृष्ठ १५३ क; 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली', मार्च १९२५, पृ० ४-३०)

[2] इसे मगधराज महाराज रामपाल (१०५७-११०२ ई०) ने अपने शासन के सातवें वर्ष (१०६४ ई०) में स्थापित किया था ('स्तन्-ऽग्युर्', अष्टसाहस्रिका-टीका के अंत में)।

अनूदित हुए हैं, इस से जान पड़ता है, कि महाविद्वान् होते हुए भी, यह लेखनी के धनी न थे। स-स्क्य में पहुँचने पर तत्कालीन विहाराधिपति ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन् के भतीजे और उत्तराधिकारी, कुन्-द्गऽ-र्ग्यल्-म्छन् (११८२-१२५१ ई०) १२२८ ई० में इन के भिक्षु-शिष्य हुए। 'प्रमाणवार्तिक' आदि कितने ही न्याय के गंभीर ग्रंथों का उन्हों ने इन से अध्ययन किया। ब्यङ्-छुप्-द्पल् और द्गे वऽि-द्पल् आदि और भी कितने ही शाक्यश्रीभद्र के शिष्य हुए। स-स्क्य-संप्रदाय के पीछे इतने प्रभावशाली बनने में उस का विक्रम-शिला के अंतिम प्रधाननायक से संबंध भी कारण हुआ। दस वर्ष रह कर, १२१३ ई० में, शाक्य-श्रीभद्र अपनी जन्मभूमि कश्मीर को लौट गए, जहाँ १२२५ ई० में ९८ वर्ष की दीर्घ आयु में इन का देहांत हुआ। इन के अनुयायी विभूतिचंद्र, दानशील आदि भोट ही में रह गए, जिन में विभूति का भोट भाषा पर इतना अधिकार हो गया, कि उन्हों ने कितने ही ग्रंथों के अनुवाद बिना किसी लो-च-व की सहायता ही के किए।

कुन्-द्गऽ-र्ग्यल्-म्छन, संघराज (१२१६-५१ ई०)। यह भोट देश के उन चंद धर्माचार्यों में हैं, जिन्हों ने धर्मप्रचार के लिए बहुत भारी काम किया। भोट-देशीय ऐतिहासिकों के मतानुसार चंगेजखाँ (जन्म११६२ ई०) ११९४ ई० में चीन का सम्राट् हुआ। १२०७ ई० में मि-ञग् प्रदेश को छोड़ कर सारा भोट उसके अधिकार में चला गया। जिस समय चंगेज देश-विजय कर रहा था, उसी समय स-स्क्य-पंडित कुन्-द्गऽ-र्ग्यल्-म्छन ने धर्म-विजय की ठानी, और उन्हों ने १२२२ ई० में मंगोल देश में धर्मप्रचारक भेजे। १२३९ ई० में मंगोल सर्दार छिन्ग-दो-ती ने मध्यभोट पर चढ़ाई की, और स-स्क्य मठ के पाँच सौ भिक्षुओं को मार डाला। र-स्ग्रेङ् और र्ग्यल्-ल्हङ् के मठों को भी इसने जला डाला। १२४३ ई० में संघराज ने अपने दो भतीजों ऽफग्स्-प और फ्यग्-न को प्रचार के लिए मंगोलिया भेजा। १२४६ ई० में वह स्वयं चीन के मंगोल सम्राट् गोतन् से मिले, और दूसरे वर्ष सम्राट् के गुरु बने। सम्राट् ने १२४८ ई० में भोट देश के द्बुस् और ग्चङ् प्रदेश अपने गुरु को प्रदान किए। भोट देश में धर्माचार्यों के शासन का सूत्रपात इसी समय से हुआ। धर्मप्रचार के

काम में लगे रहते हुए, मंगोलिया के स्प्रुल्-स्दे स्थान में, १२५० ई० में, इन का देहांत हुआ। यह अच्छे पंडित और कवि थे। इन की पुस्तक 'स-स्क्य-लेग्स्-ब्शद्' की नीति-शिक्षा-पूर्ण गाथाएँ अब भी भोट देश के पाठ्य-विषयों में हैं।

ऽफग्स्-प, संघराज (१२५१-८० ई०)। इन का जन्म १२३४ ई० में हुआ था। इन के मंगोलिया जाने की बात पहले ही कही जा चुकी है। चचा की मृत्यु के बाद यह संघराज बने। स-स्क्य विहार में तब से अब तक यही प्रथा चली आती है, कि घर का एक व्यक्ति भिक्षु बन जाता है, और वही पीछे संघराज के पद पर बैठता है। चचा ने ऽफग्स्-प की शिक्षा का विशेष ध्यान रक्खा था। १२५१ ई० में ऽफग्स्-प भावी चीन-सम्राट्, राजकुमार कुब्लै-खान् के गुरु बने। १२६५ ई० तक यह चीन और मंगोलिया में ही रहे। १२६९ ई० में फिर मंगोलिया गए, और १२८० ई० में उन का देहांत हुआ।

ग्रुब्-थोब्-ओ-ग्यन्-प (१२०४-८३ ई०)। स-स्क्य के ऽफग्स्-प का यह समकालीन था। यद्यपि पांडित्य में स-स्क्यों की समानता नहीं कर सकता था, किंतु यह अपने समय का अद्भुत चमत्कारी सिद्ध समझा जाता था। चीन के मंगोल-सम्राट् मुन्-के ने इस के सिद्धत्व की परीक्षा ली, और १२५६ ई० में उस ने इसे अपना गुरु बनाया।

जिस समय स-स्क्य-प और ब्कर्-र्ग्युद्-प सम्प्रदाय के प्रमुख इस प्रकार विद्या, सिद्ध-चर्या, और धर्म-प्रचार के जोश से अपने प्रभाव को बढ़ा रहे थे, उसी समय आचार्य शांतरक्षित का अनुयायी, भोट का सब से पुराना धार्मिक संप्रदाय र्जिङ्-म-प नीचे गिरता जा रहा था। इस ने पुराने बोन्-धर्म की भूत-प्रेत-पूजा, जादू-मंतर को अपना कर, उस में और और तरक्की की। इस के गुरु लोग मिथ्या-विश्वास-पूर्ण नई नई पुस्तकें बना कर, उन्हें बुद्ध, पद्मसंभव या किसी और पुराने आचार्य के नाम से पत्थरों और जमीन से खोद कर निकाल रहे थे। ग्तेर्-स्तोन ने ११९८ ई० में और र्जिङ्-म-धर्माचार्य स-द्बङ् ने १२५६ ई० में, ऐसे ही जाली ग्रंथों को खोद निकाला था।

स्कर्-म-वक्-सि के मरने (१२८२ ई०) पर, उस के योग्य शिष्यों में से न चुना जा कर, एक छोटा बालक रङ्-ऽब्युङ्-दों-र्जे (जन्म १२८४ ई०) उस का अवतार स्वीकार किया गया। इस से पूर्व यद्यपि एकाध ऐसे उदाहरण थे, किंतु अब तो अवतारी लामों की बीमारी सी फैल गई। स्कर्-म की देखा-देखी पीछे ऽब्रि-गुङ्-प, ऽब्रुग्-प आदि दूकर्-र्ग्युद्-प निकायों ने इस प्रथा को अपनाया। आगे चल कर चोङ्-ख-प के अनुयायियों ने भी अपने दलाई-लामा (र्ग्यल्-व-रिन्-पो-छे) और टशी लामा (पण्-छेन्-रिन्-पो-छे) के चुनावों में ऐसा ही किया; और इस प्रकार आजकल छोटे छोटे मठों से ले कर बड़ी बड़ी जागीरवाली महंतशाहियों के लिए ऐसे हजारों अवतारी लामा तिब्बत में पाए जाते हैं। इस प्रथा के इतने अधिक प्रचार का कारण क्या है? गद्दीधर के बाल्यकाल मे कुछ स्वार्थियों को मठ का सारा प्रबंध अपने हाथ में रखने का मौक़ा मिलता है; और अवतारी लामा के माँ-बाप और संबंधियों के लिए मठ एक घर की संपत्ति सी बन जाता है। लेकिन इस प्रथा के कारण उत्तराधिकार के लिए विद्या और गुण का महत्त्व जाता रहा, और फिर अधिकांश नालायक़ लोग इन पदों पर आने लगे।

बारहवीं शताब्दी में चौरासी सिद्धों के बहुत से हिंदी दोहों और गीतों के भी भोट भाषा में अनुवाद हुए। इसी समय (शोङ्-स्तोन्) र्दो-र्जे-र्ग्यल-म्छन् (मृत्यु ११७७ ई० ?) ने पंडित लक्ष्मीकर की सहायता से 'काव्यादर्श' (दंडी), 'नागानंद' (हर्षवर्द्धन), और 'बोधिसत्त्वावदानकल्पलता' (क्षेमेंद्र) ग्रंथों के भोट भाषा में भाषांतर किए।

अब मठों के हाथ में शासन का अधिकार आने पर उन्हों ने भी वही करना शुरू किया, जो शासकों में हुआ करता है। १२५२ ई० में स-स्क्यवालों ने भोट के तेरह प्रांतों पर अधिकार कर लिया। १२८५ ई० में ऽब्रि-गोङ् के अधिकारियों ने अपने विरोधी ब्य-युल् मठ को जला डाला। १२९० ई० में स-स्क्यवालों ने ऽब्रि-गोङ् को लूट लिया।

(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब् (१२९०-१३६४ ई०)। तेरहवीं सदी के अंत के साथ, भारत के बौद्ध केंद्रों से बौद्धधर्म का अंत हो गया। अब भोट देश को

सजीव बौद्ध-भारत से विचारों के दानादान का अवसर न रह गया। भोट में भी अब प्रभावशाली महंतशाहियों की प्रतिद्वंद्विता का समय आरंभ हुआ। अब तक जितने भी भारतीय ग्रंथ भोट भाषा में अनूदित हुए थे, उन को क्रम लगा कर इकट्ठा संगृहीत करने का काम नहीं हुआ था, इस लिए सारी अनुवादित पुस्तकों का न किसी को पता था, और न वह एक जगह मिल सकती थीं। ऐसे समय (१२९० ई०) में (बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब् का जन्म हुआ। यह श-लु विहार में जा कर भिक्षु हुए। यह अपने ही समय के नहीं, बल्कि आज तक के, भोट देश के अद्वितीय विद्वान हुए। शुरू में स-स्क्य मठ में भी यह अध्यापन का काम करते रहे, जिस से इन्हें वहाँ के विशाल पुस्तकालय को देखने का अवसर मिला। यद्यपि इन्हों ने 'कलापधातु-काय' (दुर्गसिंह), 'त्याद्यन्तप्रक्रिया' (हर्ष कीर्ति) आदि कुछ थोड़े से ग्रंथों के अनुवाद किए हैं; किंतु, इन का दूसरा काम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन्हों ने अपने समय तक के सभी अनुवादित ग्रंथों को एकत्रित कर क्रमानुसार दो महान् संग्रहों में जमा किया, यही स्क-ऽग्युर् (कन्-जुर्) और स्तन्-ऽग्युर् (तन्-जुर्) हैं। इन में स्क-ऽग्युर में तो उन ग्रंथों को एकत्रित किया, जिन्हें बुद्ध-वचन कहा जाता है ('स्क' शब्द का अर्थ भोट भाषा में 'वचन' होता है) 'स्तन्' का अर्थ है शास्त्र, और 'ऽग्युर' कहते हैं, अनुवाद को। स्तन्-ऽग्युर् में बुद्ध-वचन से भिन्न—आचार्यों के दर्शन, काव्य, वैद्यक, ज्योतिष, देवता-साधन, और स्क-ऽग्युर्, तथा स्तन्-ऽग्युर् की टीकाएं तथा कितने ही और ग्रंथों की टीकाएं संगृहीत हैं। इन्हों ने इन संग्रहों को अपने ही तत्वावधान में और एक निश्चित क्रम से लिखवा कर अलग अलग वेष्टनों में विभक्त किया। साथ ही ग्रंथों की सूची भी बनाई। यह मूल प्रति अब भी श-लु-विहार में (जो कि ग्यांची से दो दिन के रास्ते पर है) मौजूद है। बु-स्तोन् ने स्वयं पचासों ग्रंथ लिखे, जिन में एक में भारत और भोट देश में बौद्धधर्म के इतिहास (१३२२ ई० में लिखित) का महत्त्वपूर्ण वर्णन है। १३६४ ई० में श लु विहार में इस महान् विद्वान् के देहांत के साथ भोट देश के धार्मिक इतिहास के सब से महत्त्वपूर्ण खंड की समाप्ति होती है।

म्-सक्य-युग के अंत में (यर्-लुङ्) ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन, चंद्रगोमी के 'लोकानंद' नाटक और कालिदास के 'मेघदूत' तथा कुछ और ग्रंथों के अनुवादक स्यङ्-छुप्-चे-मो (१३०३ ई०) जैसे कुछ और विद्वान् अनुवादक हुए।

५—चोङ्-ख-प-युग (१३७६-१६६४)

चोङ्-ख-प । बु-स्तोन् के देहांत के सात वर्ष पूर्व (१३५७ ई० में) अम्-दो प्रांत के चोङ्-ख ग्राम में एक मेधावी बालक उत्पन्न हुआ जिस का भिक्षु-नाम यद्यपि ब्लो-ब्सङ्-ग्रग्स्-प (सुमतिकीर्ति) है, तो भी वह अधिकतर अपने जन्म-ग्राम के नाम से चोङ्-ख-प (चोङ्-ख-वाला) ही कर के प्रसिद्ध है। अम्-दो ल्हासा से महीनों के रास्ते पर मंगोलिया की सीमा के पास एक छोटा सा प्रदेश है। चोङ्-ख-प के पूर्व यह प्रदेश अशिक्षित लोगों का ही निवास-स्थान समझा जाता था। सात वर्ष की अवस्था (१३६३ ई०) में यह दोन-रिन्-प का श्रामणेर बना। तब से पंद्रह वर्ष की अवस्था तक वहीं अध्ययन करता रहा। तब उसे विशेष अध्ययन के लिए अच्छे अध्यापकों की आवश्यकता हुई, और १३७२ ई० में मध्य-भोट में चला आया। उन्नीस वर्ष की छोटी अवस्था (१३७६ ई०) में उस ने अपना प्रथम ग्रंथ लिखा। (रे-म्दऽ-प) ग्शोन्-नु-ब्लो-ग्रोस् से इस ने दर्शन-शास्त्र पढ़ा। 'विनय' में इस का गुरु बु-स्तोन् का शिष्य (द्मर्-स्तोन्) र्ग्यं-म्छो-रिन्-छेन् था। चोङ्-ख-प बु-स्तोन् के ग्रंथों से बहुत प्रभावित हुआ, और वस्तुतः उस के इतने महान् कार्य को संपन्न करने में बु-स्तोन् के कार्य ने बहुत उत्साह प्रदान किया। उस को अफसोस था, कि क्यों न मुझे बु-स्तोन् के चरणों में बैठ कर अध्ययन करने का सौभाग्य मिला। इस ने स-स्क्य-प, द्कर्-र्ग्युद्-प और (दीपंकर के अनुयायी) ब्कऽ-दम्-प तीनों ही संप्रदायों से बहुत सी बातें सीखीं। इस के अनुयायी अपने को ब्कऽ-दम्प के अंतर्गत मान कर अपने को नवीन ब्कऽ-दम्-प कहते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार ब्कऽ-दम्-प मठ स्वेच्छा से द्गे-लुग्स्-प (चोङ्-ख-प के संप्रदाय) में परिणत हो गए, उस से उन का यह कहना अयुक्त भी नहीं है।

चोङ्-ख-प के जन्म से दो वर्ष पूर्व (१३५४ ई० में) फग्-मुग् के

(सि-तु) ब्यङ्-छुब्-र्ग्यल्-म्छन् (जन्म १३०२ ई०) ने सारे गुचङ् प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। १३४९ ई० में उस ने द्बुस् प्रदेश को भी अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार चोङ्-ख-प के कार्य-क्षेत्र में पदार्पण करने के समय मध्य-भोट में एक सुदृढ़ शासन स्थापित हो चुका था। किंतु धार्मिक स्थिति बहुत बुरी थी। बड़े बड़े विद्वान् एक एक कर के चल बसे थे। पुराने विद्या-केंद्र अपना वैभव खो चुके थे। म्ङ-र्-रिस्-प (दर्शनवादी) और दृक्ड-दम्-प यद्यपि अब भी ज्ञान और वैराग्य की ज्योति जलाए हुए थे, किंतु यह ज्योति पहाड़ों की गुफाओं और देश के गुमनाम कोनों में छिपी हुई थी। चोङ्-ख-प में ज्ञान और वैराग्य, अथवा प्रज्ञा और समाधि दोनों उचित मात्रा में मौजूद थीं; और उस से भी अधिक उस में धर्म की बिगड़ी अवस्था के सुधारने की लगन थी। वह विद्वान, सुवक्ता और सुलेखक था, और अपनी ओर योग्य व्यक्तियों को आकर्षण करने की शक्ति रखता था। इतने अधिक योग्य और कार्य-कुशल शिष्य किसी भी भोट-देशीय आचार्य को न मिले। चु-स्तोन् का सारा काम एक अकेले व्यक्ति का था। १३९५ ई० तक चोङ्-ख-प का विद्यार्थी जीवन रहा। १३९६ ई० में अब वह अपने जीवनोद्देश्य—बौद्धधर्म में आई बुराइयों के दूर करने और विद्या-प्रचार—में लग गया। वह समझता था, कि लोगों का मिथ्या-विश्वास हटाया नहीं जा सकता, जब तक कि उन में दर्शन-शास्त्र तथा विद्या का प्रचार न किया जाय। उस के इस काम ने म्ङ-र्-रिस्-प के काम को ले लिया, और इस प्रकार कुछ ही समय में म्ङ-र्-रिस्-प के सारे मठ द्गे-लुग्स् संप्रदाय में शामिल हो गए। १३९६ ई० में इस ने ग्डन् का महाविद्यालय स्थापित किया। १४०५ ई० में ल्हासा में संघ-संमेलन के लिए एक विशाल भवन (स्मोन्-लम्-छेन्-पो) बनवाया, और उसी वर्ष ल्हासा से दो दिन के रास्ते पर द्गऽ-ल्दन् (गन्दन्) का महाविहार स्थापित किया। उस के शिष्यों में जम्-द्ब्यङ्स् (१३७८-१४४९ ई०) ने १४१६ ई० में ऽब्रस्-स्पुङ्स् (डे-पुङ् = धान्यकटक) के महाविहार की स्थापना की। शाक्य-ये-शेस् (जन्म १३८३ ई०) ने १४१९ ई० में से-र महाविहार की स्थापना की। इसी वर्ष चोङ्-ख-प की गन्दन् में मृत्यु हुई। पीछे उस के शिष्य (प्रथम दलाई लामा) द्गे-ऽदुन्-ग्रुब्

(१३९१-१४७४ ई०) ने १४४७ ई० में बक्र-शिस्-ल्हुन्-पो (टशील्हुन्पो) महाविहार स्थापित किया, और (सुमद्) शेस्-रब्-दुसङ् (१३९५-१४५७ ई०) ने खमस् प्रदेश में छप्-म्दो (१४३७) के महाविहार की स्थापना की।

चोङ्-ख-प ने जहाँ शास्त्रों के अध्ययन के लिए इतना किया, वहाँ उस ने भिक्षु-नियमोंके प्रचार के लिए कम काम नहीं किया। इसी काम के लिए तो इस के अनुयायी दुगे-लुगस्-प (भिक्षु-नियमानुयायी) कहलाए। इस ने भिक्षुओं के प्रधान वस्त्रों के लिए पीला रंग पसंद किया, और विशेष अवसरों पर पहनी जाने वाली टोपियों का रंग भी पीला रक्खा, जिस से इस के अनुयायी पीली-टोपीवाले लामा कहे जाते हैं। अवतारों की महामारी से ग्रस्त भोट देश में उत्तराधिकारी चुनने में उस ने योग्य शिष्य का नियम बनाया, और आज तक चोङ्-ख-प की गद्दी पर उस का अवतार नहीं, उस की परंपरा का योग्य पुरुष बैठता है, जिसे कि दुगऽ-ल्दन्-ख्रि-प (गन्दन का गद्दी-नशीन) कहते हैं। तो भी उस के अनुयायियों ने उस के अन्य मुख्य शिष्यों के उत्तराधिकार के लिए फिर अवतार का ख्याल रखना शुरू किया; और आज दुगे-लुगस्-संप्रदाय मे अवतारी लामों की संख्या सब से अधिक है।

चोङ्-ख-प का शिष्य *मुखस् ग्रुप्* (१३८५-१४३८ ई०)—जो पीछे दुगऽल्दन् का तीसरा संघराज हुआ—उस के सभी शिष्यों में महाविद्वान् था। इस ने अनेक ग्रंथ लिखे, और अपने गुरु के काम को आगे बढ़ाया।

पंडित वनरत्न (१३८४-१४६८ ई०)। पंडित वनरत्न अंतिम भारतीय बौद्ध भिक्षु थे, जिन्हों ने भोट में जा कर अनुवाद और धर्म-प्रचार का काम किया। इन का जन्म पूर्वदेश (बंगाल ?) के एक राजवंश में हुआ था। इन के गुरु का नाम बुद्धघोष था। बीस वर्ष की अवस्था में यह सिंहल चले गए; और वहाँ आचार्य धर्मकीर्ति[1] की शिष्यता में भिक्षु हुए। छ वर्षों तक वहीं अध्ययन करते रहे। फिर श्री धान्यकटक होते हुए मगध देश में आए। वहाँ हरिहर पंडित के पास 'कलाप' व्याकरण पढ़ी। फिर कई जगह विचरते हुए नेपाल पहुँचे। वहाँ

---

[1] शायद 'निकायसंग्रह' के कर्ता प्रसिद्ध राजगुरु धर्मकीर्ति।

पंडित शीलसागर[1] के पास कुछ अध्ययन कर १४५३ ई० में भोट देश आए। ल्हासा और यर्-लुङ्स् में कितने ही समय तक रह कर, इन्हों ने कुछ तांत्रिक ग्रंथों के अनुवाद में सहायता की। फिर नेपाल लौट कर शांतिपुरी विहार में ठहरे। दूसरी बार राजा (सि-तु) रब्-बर्त्तन के निमंत्रण पर फिर भोट देश आए। भोटराज ग्रग्स्-प-ऽब्युङ्-ग्नस् के समय में राजधानी चेंस्-थङ् में पहुँचे। कितने ही समय रह कर फिर नेपाल लौट गए, और वहीं १४६८ ई० में इन का देहांत हुआ। इन के द्वारा अनुवादित ग्रंथों में सिद्धों के कुछ दोहे और गीत भी हैं। (ऽगोस्-यिद्-ब्स्तद्-च) गशोन्-नुद्पल् (जन्म १३९२ ई०), (स्तग्) शेस्-रब्-रिन्-छेन् (जन्म १४०५ ई०) और शेस्-रब्-ग्येल् (१४२३ ई०) इन के सहायक लो-च्-व थे।

(श-लु) धर्मपालभद्र (जन्म १४२७ ई०)। यही अंतिम विद्वान् लो-च्-व थे। यह बु-स्तोन् के प्रसिद्ध श-लु-विहार के भिक्षु थे। इन्हों ने 'अभिधर्मकोश-टीका' (स्थिरमति), 'ईश्वरकर्तृत्वनिराकृति' (नागार्जुन), 'मंजुश्री-शब्दलक्षण' (भव्यकीर्ति) आदि ग्रंथों के अनुवाद किए। इन से पूर्व इसी श-लु विहार के दूसरे विद्वान् लो-च-व रिन्-छेन् ग्सङ् (१४८९-१५६३ ई०) ने भी कुछ ग्रंथों के अनुवाद किए थे।

लामा *तारानाथ* (जन्म १३७५ ई०)। असली नाम ग्येल्-स्ङ्-प कुन्-दगऽ-स्ञिङ्-पो था। यद्यपि इन का अध्ययन बु-स्तोन् या थोङ्-रब-प की भाँति गंभीर न था, तो भी यह बहुश्रुत थे। इन्हों ने बहुत सी पुस्तकें लिखीं, जिन में भारत में बौद्धधर्म के इतिहास विषय की भी एक है। सर्वप्रथम इसी इतिहास का एक युरोपीय भाषा में अनुवाद होने से तारानाथ का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इन के अनुवादित ग्रंथों में अनुभूतिस्वरूपाचार्य का 'सारस्वत' भी है, जिस का इन्हों ने कुरुक्षेत्र के पंडित कृष्णभद्र की सहायता से अनुवाद किया था।

पंद्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दी भोट देश में भिन्न भिन्न मठों की प्रतिद्वंद्विता का समय था। यह प्रतिद्वंद्विता सशस्त्र प्रतिद्वंद्विता

---

[1] ऽब्रुग्-प-पद्म-द्कर-पो (जन्म १५२७ ई०)—'छोस्-ऽब्युङ्' पृष्ठ १५५ क।

थी। १४३५ ई० में फग्-मुग् मठ वालों ने ग्चङ् प्रदेश को, रिन्-स्पुङ् वालों के हाथ से छीन लिया। १४८० ई० में श्य-द्मर् लामा (छोस्-ग्रग्स्-ये-शेस्—मृत्यु १५२४ ई० ?) ने ग्चङ् की सेना ले कर द्बुस-प्रदेश पर चढ़ाई की। १४९८ ई० में रिन्-छेन्-स्पुङ्-पो ने ग्चङ् की सेना लेकर स्नेउ-ग्दोङ् और स्ग्यिद्-शङ् पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष ग्सङ्-फु और स्कर्-म लामों ने वार्षिक धर्म-संमेलन के समय स-स्क्य-प और-ऽब्रस् स्पुङ् के भिक्षुओं को अपमानित किया। १५१८ ई० तक—जब तक कि ग्चङ् की शक्ति क्षीण न हो गई—ऽब्रस्-स्पुङ् और से-र के भिक्षु धार्मिक पूजा (स्मोन्-लम् छेन्-पो) में अपना स्थान प्राप्त न कर सके। १५७५ ई० में रिन्-स्पुङ् (ग्चङ्) ने फिर द्बुस् में आ कर लूटमार की। १६०४ ई० में स्कर्-म सेना ने स्क्य-शोद् दुर्ग नष्ट कर दिया। १६१० ई० में फिर ग्चङ्-सेना ने द्बुस् पर चढ़ाई की। १६१२ ई० में स्कर्-म महंतराज सारे ग्चङ् का शासक बन बैठा। १६१८ ई० में ग्चङ्-सेना ने द्बुस् पर चढ़ाई कर ऽब्रस्-स्पुङ् विश्वविद्यालय के हज़ारों भिक्षुओं को मार डाला।

ऊपर के वर्णन से मालूम होगा, कि उस समय भोट देश के मठ, विद्वानों और विरागियों के एकांत-चिंतन के स्थान न हो कर सैनिक अखाड़े बन गए थे। वस्तुतः सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दियों में यह बात भारत और युरोप पर भी ऐसे ही घटती है। भारत में भी इस समय संन्यासियों और वैरागियों के अखाड़े और उन के नागे सैनिक ढंग पर संगठित ही न थे, बल्कि कुंभ और मेलों पर इन की आपस में .खूब मारकाट होती थी। युरोप में पोप के भिक्षुओं की भी उस समय यही दशा थी। चोङ्-ख-प के अनुयायियों की प्रशंसा में यह बात ज़रूर कहनी पड़ेगी, कि १६४२ ई० तक—जब कि भोट का राज्य उन्हें मंगोल शिष्यों द्वारा अर्पित किया गया—उन्हों ने शासन और राज्य दख़ल करने का प्रयत्न नहीं किया। वह बराबर धर्म-प्रसार और विद्या-प्रचार में लगे रहे। उन के ऽब्रस्-स्पुङ्, से-र, द्गऽ-ल्दन्, ब्क्र-शिस्-ल्हुन्-पो, विहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप धारण कर लिया था, जिन में कि भोट देश के कोने कोने के ही नहीं, बल्कि सुदूर मंगोलिया और साइबेरिया तक के भिक्षु

अध्ययनार्थ आने लगे थे। इन विश्वविद्यालयों के काम को देख कर धनी, ग़रीब सभी जनता दिल खोल कर उन की सहायता कर रही थी। इन के छात्रावास प्रदेश प्रदेश के लिए नियत थे, जिन में कुछ वृत्तियाँ भी नियत हो गई थीं। अर्थ-हीन विद्यार्थी भी इन छात्रावासों में रह कर अच्छी तरह विद्याध्ययन कर सकते थे, और विद्या-समाप्ति पर अपने देश में जा कर अपनी मातृ-संस्था और द्गे-लुग्स्-प-संप्रदाय के प्रति प्रेम और आदर का प्रसार करते थे। इतना ही नहीं, द्गे-लुग्स् सम्प्रदाय के नेताओं ने मंगोलिया में स-स्क्य संघराज के धर्म-प्रचार के कार्य को जारी रक्खा। १५७७ ई० में तीसरे दलाई लामा बसोद्-नंम्स्-र्ग्य-म्छो धर्म-प्रचारार्थ स्वयं मंगोलिया गए। और मंगोल-सर्दार अल्-तन्-ख़ान् ने (१५७८ ई० में) उन का स्वागत किया। इस समय तक द्गे-लुग्स्-प विश्वविद्यालयों के कितने ही मंगोल स्नातक अपने देश में फैल चुके थे। दूसरे वर्ष दलाई लामा ने वहाँ थेग्-छेन्-छोस्-ऽखोर्-ग्लिङ् की स्थापना की। इस यात्रा में उन्हों ने थम्-दो, ग्यमस आदि के महाविहारों का निरीक्षण किया, और कुछ नए विहार स्थापित किए। १५८८ ई० में तृतीय दलाई लामा का देहांत हो गया।

चतुर्थ दलाई लामा योन्-तन् र्ग्य-म्छो, १५८९ ई० में, मंगोल-वंश में ही पैदा हुआ। इस बात ने मंगोल-जाति का द्गे-लुग्स्-प संप्रदाय से घनिष्ट संबंध स्थापित कर दिया। यही वजह हुई कि जब भोट के राज्यलोलुप मठों ने द्गे-लुग्स्-प के प्रभाव को बढ़ने देख उन से भी छेड़खानी शुरू की, तो मंगोल वीरों ने उन की रक्षा के लिए अपना रक्त देना निश्चय कर लिया। १६१८ ई० में ग्चङ्-सेना का ऽब्रस्-स्पुङ् के हज़ारों भिक्षुओं को जान से मारना, मंगोलों के लिए असह्य हो गया। इस ख़बर के पाते ही सारे मंगो-लिया में ग्चङ् के मठधारियों के ख़िलाफ़ क्रोध का समुद्र उमड़ पड़ा। उस समय तक मंगोल-वीर गु-श्री-ख़ान् (१५८२-१६५४ ई०) की कीर्ति सारे मंगो-लिया में फैल चुकी थी। उस ने मंगोल योद्धाओं की एक बड़ी सेना तैयार कर मध्य-तिब्बत की ओर कूच कर दिया। ग्चङ् वालों को मालूम होने पर, वह भी उन से लड़ने के लिए आगे बढ़े। १६२० ई० में र्ग्यङ्-थङ्-गङ् में दोनों

सेनाओं की मुठभेड़ हुई। बहुत से भोटिया सैनिक मारे गए, किंतु उस वर्ष कोई आखिरी फ़ैसला नहीं हुआ। दूसरे वर्ष (१६२९ ई० में) फिर वहीं युद्ध हुआ, और ग्चङ् सेना बुरी तरह से पराजित हुई। तो भी कुछ शर्तों के साथ फिर राज्य दुगे-ग्रगुस्-प के हाथ में ही रहने दिया गया। लेकिन दुगे-लुगुस्-प को दबाने की नीति न बदली। बल्कि दुगे-लुगुस्-प के इतने प्रबल पक्षपातियों को देख कर विरोधी और भी तेज हो उठे। १६३७ ई० में इस के लिए दुगे-लुगुस् विरोधिनी खल्-ख (मंगोल) जाति को गु-श्री-खान् ने को-को-नोर् भील के पास युद्ध करके परास्त किया, और वहाँ से द्बुस् प्रदेश (ल्हासा-वाले प्रांत) में आ कर, फिर को-को-नोर लौट गया। १६३९ ई० में बौद्ध-विरोधी बोन्-धर्मानुयायी खम्स् के शासक बे-रि से युद्ध हुआ। वह राज्य से वंचित कर क़ैद कर लिया गया, और दूसरे वर्ष उस के अत्याचारों के लिए उसे मृत्यु-दंड दिया गया। ग्चङ् वालों की शरारत अभी कम न हुई थी, इस लिए १६४२ ई० में गु-श्री ने ग्चङ् पर चढ़ाई करके राजा को पकड़ कर, ग्चङ् और कोङ्-पो प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया। गु-श्री-खान् ने सारे विजित राज्य को पंचम दलाई लामा ब्लो-ब्सङ्-ग्र्य-म्छो के चरणों में अर्पण किया, और उन की तरफ़ से प्रबंध के लिए वह भोट का राजा उद्घोषित हुआ। इस प्रकार भोट में धर्माचार्यों का दृढ़ शासन स्थापित हो कर अब तक चला जा रहा है।

(*ग्र्यल्-ब*) *ब्लो-ब्सङ्-ग्र्य-म्छो* (१६१७-८२ ई०)। चौथा दलाई लामा मंगोल जाति का था, यह पहले कह आए हैं। १६१६ ई० में उस की मृत्यु के बाद, उस का अवतार समझा जानेवाला पाँचवाँ दलाई लामा पैदा हुआ। यह अभी दो वर्ष का ही था, तभी ग्चङ् सेना ने डे-पुङ् के हज़ारों भिक्षुओं को मारा था। छ वर्ष की अवस्था (१६२२ ई०) में यह ऽब्रस्-स्पुङ् (डे-पुङ्) का नायक उद्घोषित हुआ। जब अवतार से सब काम होनेवाला है, तब योग्यता और आयु का विचार करने की क्या आवश्यकता? १६३८ ई० में ब्क्र-शिस्-ल्हुन्-पो विहार के नायक पण्-छेन (महापंडित) छोस्-क्यि-ग्र्यल्-म्छन् (१५७०-१६६२ ई०) से इस ने भिक्षु-दीक्षा ग्रहण की।

मंगोल-सर्दार ने चोंङ्-ख-प के गद्दीधर गन्दन्-टी-पा को राज्य न प्रदान कर, क्यों दलाई लामा को दिया, इस का कारण स्पष्ट है। मंगोलिया में धर्म-प्रचार के लिए तीसरा दलाई लामा गया था, और चौथा दलाई लामा स्वयं मंगोल था, इस प्रकार वह दलाई लामा से ही अधिक परिचित था। भोटिया लोग दलाई लामा की जगह पर ग्यल्-व-रिन्-पो-छे (जिन-रत्न) शब्द का प्रयोग करते हैं। दलाई लामा यह मंगोल लोगों का दिया नाम है। मंगोल भाषा में त-ले सागर को कहते हैं। पहिले को छोड़ कर बाक़ी सभी दलाई लामों के अंत में ग्य-म्छो (सागर) शब्द का प्रयोग होता है, इसी लिए मंगोल लोगों ने त-ले-लामा कहना शुरू किया, जिस का ही बिगड़ा रूप दलाई लामा है। टशी (बृक्र-शिस्) लामा को भोट भाषा में पण्-छेन्-रिन्-पो-छे (महापंडित-रत्न) कहते हैं। पंचम दलाई लामा सुमतिसागर के गुरु पण्-छेन्-छोस्-क्यि-ग्यंल्-म्छन् से पूर्व यहाँ अवतार की प्रथा न थी। किंतु पचम दलाई के गुरु होने से, उन का सन्मान बहुत बढ़ गया; और मृत्यु के बाद उन के लिए भी लोगों ने अवतार की प्रथा खड़ी कर ली। वर्तमान टशी-लामा (पण्-छेन्)-छोस्-क्यि-त्रि-म (धर्मसूर्य) उन के पाँचवें अवतार हैं। पंचम दलाई लामा सुमतिसागर यद्यपि अवतार समझे जाने के कारण उस पद पर पहुँचे थे, तो भी वह बड़े कार्यपटु शासक थे। इन के शासन के समय में ही १६४४ ई० में मिङ्-वंश को हटा कर मंचू-सर्दार सुन्-ति-ज़ि-ये-चुङ् चीन का सम्राट् बना। दूसरे साल १६४५ ई० में दलाई लामा ने पोतला का महाप्रासाद बनवाया। १६५२ ई० में चीन-सम्राट् के निमंत्रण पर वह चीन गए; और सम्राट् ने उन्हें ता-इ-श्री की पदवी से विभूषित किया। यह सारी अभ्यर्थना चीन-सम्राट् ने शक्तिशाली मंगोल जाति को अपने पक्ष में करने के लिए की थी; जिन पर दलाई लामा का बहुत अधिक प्रभाव था। १६५४ ई० में गु-श्री-खान् के मरने पर, उस का पुत्र त-यन् खान् (१६६० ई०) भोट का राजा बनाया गया। उस के भी मरने पर त-ले-खान्-रत्न भोट का राजा बना।

पंचम दलाई लामा को भी धर्म-प्रचार की लगन थी। वह चीन से लौटते हुए स्वयं इस के लिए बहुत से प्रदेशों में गए। उन्हों ने एक होनहार भिक्षु

फुन्-छोग्स्-ल्हुन्-ग्रुप् को संस्कृत पढ़ने के लिए भारत भेजा। इस ने कुरुक्षेत्र के पंडित गोकुलनाथ मिश्र और पंडित बलभद्र की सहायता से रामचंद्र की पाणिनि-व्याकरण की 'प्रक्रियाकौमुदी' (१६५८ ई०) और 'सारस्वत' का (१६६५ ई०) भोट भाषा में अनुवाद किया। गौतमभारती, ओंकारभारती और उत्तमगिरि नामक रमते साधुओं की सहायता से (१६६४ ई० में) इस ने एक वैद्यकग्रंथ का भी अनुवाद किया। यही भोट का अंतिम अनुवादक था। १६८२ ई० में पाँचवें त-ले-लामा की मृत्यु हुई।

६—वर्तमान-युग (१६६४–)

छङ्स्-दब्यङ् स्-र्ग्य-म्छो (१६८३-१७०५ ई०)। पंचम दलाई की मृत्यु के बाद ब्रह्मघोष-सागर उस का अवतार समझा गया। यह बड़ी ही रँगीली तबियत का आदमी था। वस्तुतः यह भिक्षु बनने के लिए नहीं पैदा हुआ था। लेकिन क्या करे ? १७०२ ई० में इस ने भिक्षुव्रत तोड़ दिया। लोगों में तहलका मच गया। और इस के फलस्वरूप ल्ह-ब्सङ् ने सरकारी सेना को परास्त कर १७०५ ई० में अपने को भोट का राजा उद्घोषित किया। हालत और भी खराब हुई होती, किंतु जिस वक़्त छठाँ दलाई ब्रह्मघोष-सागर चीन जा रहा था, रास्ते में कोकोनोर झील के पास उस की मृत्यु हो गई। इधर एक दूसरे ही व्यक्ति पद्-द्कर्-ऽजिन्-ये-शेस्-र्ग्य-म्छो (पुंडरीकधर ज्ञान-सागर) को पाँचवे दलाई लामा का असली अवतार बनाने का उपक्रम हो चुका था, किंतु ब्रह्मघोष के मर जाने से इस की जरूरत न रही। १७०८ ई० में स्कल्-ब्सङ्-र्ग्य-म्छो पैदा हुए, जो छठे दलाई के अवतार माने गए।

ल्ह-ब्सङ् के स्वतंत्र राजा बन जाने की सूचना, जब मंगोलिया में पहुँची, तो वहाँ फिर तैयारी होने लगी, और १७१७ ई० में जुङ्-गर् (मंगोलों की बाईं शाखा की) सेना भोट की तरफ रवाना हुई। एक प्रचंड तूफ़ान की भाँति, इस के रास्ते में जो कोई विरोधी आया, उस का इस ने सत्यानाश किया। ल्हासा के उत्तर तरफ के मैदान में ल्ह-ब्सङ् ने इस का सामना किया, और लड़ाई में काम आया। म्जिङ्-म-लामों ने ल्ह-ब्सङ् का पक्ष

लिया था, इस लिए ल्हुङ्-गर् सेना ने उन के मठों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर जलाया, और नष्ट किया। उन के शेम्-ग्यल्-गलिङ्, र्दो-ङ्-गग् और स्गिन्-ग्रोल्-गलिङ् मठ लूट लिए गए। ल्हुङ्-गर् के मलगकार्य कृत्य के चिह्न-स्वरूप, आज भी भोट देश में सैकड़ों खंडहर जगह जगह खड़े दिखाई देते हैं। इस प्रकार मंगोलों की सहायता से फिर दलाई लामा को राज्य-शक्ति प्राप्त हुई। सातवें दलाई लामा स्कल्-ब्सङ्-र्ग्य-म्छो (भद्रसागर) बड़े ही विरागी पुरुष थे। ये राज्य-कार्य की अपेक्षा ज्ञान-ध्यान में अपना सारा समय लगाते थे। इन के काल में १७२७ ई० में एक बार फिर कुछ मंत्रियों ने बगावत की। उस समय (फो-ल-धे-जे) ब्सोद्-नम्स्-स्तोब्-र्ग्यस्—*जिसे राजा मि-द्बङ् भी कहते हैं*—ने ग्ङऽ-रिस् और ग्चङ् की सेनाओं की सहायता से उन्हें परास्त कर दिया। इस सेवा के लिए मि-द्बङ् १७२८ ई० में भोट का उपराज बनाया गया। इसी मि-द्बङ् ने सर्वप्रथम स्क-ऽग्युर और स्तन्-ऽग्युर् दोनों महान् ग्रंथ-संग्रहों को लकड़ी पर खुदवा कर छापा बनवाया, और उसे स्नर्-थङ्-विहार में रक्खा। इस मशहूर छापे के छपे कितने ही कन्-जुर्, तन्-जुर आज दुनिया के पुस्तकालयों में पाए जाते हैं।

सातवें दलाई के समय में रोमन-कैथोलिक साधु कैपुचिन फादर्स[1] ल्हासा में गए, और १७०८ ई० तक ईसाई-धर्म का प्रचार करते रहे। इन से पहले १६२६ ई० में पोर्तुगीज जेसुइट् पादरी अंद्रेदा ने तिब्बत में प्रवेश किया था, किंतु वह ल्हासा या ब्क-शिस्-ल्हुन्-पो तक नहीं पहुँच सका था।

आठवें दलाई लामा के समय में कोई प्रसिद्ध घटना नहीं हुई। नवें (११ वर्ष) दसवें (२३ वर्ष), ग्यारहवें (१७ वर्ष), और बारहवें (२० वर्ष) दलाई लामा बहुत थोड़ी ही थोड़ी उम्र में मर गए। लोगों का कहना है; कि प्रबंधकों ने अधिकार हाथ से न जाने देने के लिए, उन्हें खतम कर दिया। इस के बाद वर्तमान तेरहवें दलाई लामा थुब्-स्तन्-र्ग्य-म्छो (मुनिशासनसागर जन्म १८७६ ई०) ही दीर्घजीवी हुए। अभी पिछले महीने में ही इन की मृत्यु का

[1] Capuchin Fathers

समाचार प्राप्त हुआ है।

१७७९ ई० में तीसरे टशी लामा द्पल्-लदन्-ये-शेस् (ज-१७४० ई०) चीन-सम्राट् के निमंत्रण पर पेकिन् गए थे; वहाँ इन का बड़ा स्वागत हुआ था, किंतु वहीं चेचक से इन का देहांत हो गया।

१८४० ई० में कुछ रोमन कैथोलिक पादरी ल्हासा में दो ढाई मास रहे थे।

१९०४ ई० में लार्ड कर्ज़न ने कुछ व्यापारिक शर्तों को मनवाने तथा रूस के प्रभाव को भोट में न बढ़ने देने के लिए सशस्त्र मुहिम भेजी। ल्हासा अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया, किंतु पीछे रूसी और अंग्रेज़ी सरकारों में समझौता हो गया, जिस से तिब्बत फिर पूर्ववत् रहने दिया गया। बीच में चीन और तिब्बत में मतभेद हो जाने से दलाई लामा को भारत चला आना पड़ा था; किंतु १९१२ ई० में चीन की राज्य-क्रांति के समय मौक़ा मिल गया, और भोट सैनिकों ने चीनी अधिकारियों को भोट से निकाल बाहर किया। दलाई लामा फिर तिब्बत लौट गए थे।

पाँचवें दलाई लामा के बाद धार्मिक क्षेत्र में भोट ने कोई विशेष कार्य न किया। डे-पुङ्-, से-र आदि बड़े बड़े द्गे-लुग्स्-प विहार अब भी बड़ी बड़ी शिक्षण-संस्थायें हैं, और कितने ही काम पूर्ववत् चले जाते हैं, तो भी धार्मिकक्षेत्र में नवजीवन की बहुत कमी है।

परिशिष्ट

१—भोटदेशीय संवत्सर-चक्र (रब्-ऽब्युङ्) का आरंभ[1]

रब्-ऽब्युङ्	ईस्वी सन्
१	१०२७
२	१०८७
३	११४७
४	१२०७
५	१२६७
६	१३२७
७	१३८७
८	१४४७
९	१५०७
१०	१५६७
११	१६२७
१२	१६८७
१३	१७४७
१४	१८०७
१५	१८६७
१६	१९२७

---

[1] आजकल (संवत् १९९०) में सोलहवें रब्-ऽब्युङ् का—जो कि माघ संवत् १९८३ में आरंभ हुआ था—सातवाँ जल-(स्त्री) पक्षी वर्ष चल रहा है।

२—'भोटदेशीय संवत्सर-चक्र (रब्-ब्युङ्)[2]

(स्त्री) शश	(पुरुष) नाग	(स्त्री) सर्प	(पुरुष) अश्व	(स्त्री) मेष	(पुरुष) वानर	(स्त्री) पक्षी	(पुरुष) श्वा	(स्त्री) शूकर	(पुरुष) मूषक	(स्त्री) वृष	(पुरुष) व्याघ्र
अग्नि (प्रभव) 1	भूमि, भू (विभव) २	भूमि (शुक्ल) °मूष ३	लोह (प्रमोद) ४	लोह (प्रजापति) ५	जल (अंगिरा) °अश्व ६	जल (श्रीमुख) ७	द्रुम (भाव) ८	द्रुम (युवा) °शश ९	अग्नि (धाता) १०	अग्नि (ईश्वर) °शूकर ११	भूमि (बहुधान्य) १२
भूमि (प्रमाथी) १३	लोह (विक्रम) °वानर १४	लोह (वृष) १५	जल (चित्रभानु) १६	जल (सुभानु) °नाग १७	द्रुम (तारण) १८	द्रुम (पार्थिव) °वृष १९	अग्नि (व्यय) २०	अग्नि (सर्वजित्) २१	भूमि (सर्वधारी) °वृष……२२	भूमि (विरोधी) २३	लोह (विकृत) २४
लोह (खर) °अश्व २५	जल (नन्दन) २६	जल (विजय) °नाग २७	द्रुम (जय) २८	द्रुम (मन्मथ) २९	अग्नि (दुर्मुख) °शूकर ३०	अग्नि (हेमलंब) ३१	भूमि (विलंब) ३२	भूमि (विकारी) °मेष ३३	लोह (शर्वरी) ३४	लोह (प्लव) ३५	जल (शुभकृत्) ३६
जल (शोभन) ३७	द्रुम (क्रोधी) °मूष ३८	द्रुम (विश्वावसु) ३९	अग्नि (पराभव) ४०	अग्नि (प्लवग) °पक्षी ४१	भूमि (कीलक) ४२	भूमि (सौम्य) ४३	लोह (साधारण) °सर्प ४४	लोह (विरोधकृत्) ४५	जल (परिधावी) ४६	जल (प्रमादी) °अश्व ४७	द्रुम (आनंद) °व्याघ्र ४८
द्रुम (राक्षस) °श्व ४९	अग्नि (नल) ५०	अग्नि (पिंगल) ५१	भूमि (कालयुक्त) °मेष ५२	भूमि (सिद्धार्थ) ५३	लोह (रौद्र) ५४	लोह (दुर्मति) °शश ५५	जल (दुन्दुभि) ५६	जल (रुधिरोद्गारी) °पक्षी ५७	द्रुम (रक्ताक्षी) ५८	द्रुम (क्रोधन) ५९	अग्नि (क्षय) °वृष ६०

[1] संवत्सर का नाम बनाने में (स्त्री) शश, (पुरुष) नाग आदि बारहों नामों को उन के नीचे के कोष्ठकों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे—अग्नि (स्त्री) शश, भूमि (पुरुष) नाग। (स्त्री) (पुरुष) को कभी छोड़ भी दिया जाता है, और कभी कभी भूमि आदि पाँचों नाम भी छोड़ दिए जाते हैं।

[2] कलोङ्-दंल्-(जन्म १७१९ ई०) गसुं-बुं-म पृष्ठ १६ ख। ० अधिक मास वाले वर्ष और मास, स-स्क्य-(ग्रगस्-प-र्ग्यल्-म्छन्, ११७५-१२१६ ई०) बुर्क-बुं, त, पृष्ठ २०३ ख।

३—भोटदेशीय मासों के नाम[1]

भोटदेशीय				भारतीय
संख्या	नाम	ऋतुओं के अनुसार नाम	ऋतु	नाम
१	नाग	अंत	हेमंत	माघ
२	सर्प	आदि	ग्रीष्म	फाल्गुण
३	अश्व	मध्य	,,	चैत्र
४	मेष	अंत	,,	वैशाख
५	वानर	आदि	शरद्	ज्येष्ठ
६	पक्षी	मध्य	,,	आषाढ़
७	श्वा	अंत	,,	श्रावण
८	शूकर	आदि	शिशिर	भाद्रपद
९	मूषक	मध्य	,,	आश्विन
१०	वृष	अंत	,,	कार्तिक
११	व्याघ्र	आदि	हेमंत	मार्गशीर्ष
१२	शश	मध्य	,,	पौष

[1] भोटदेशीय प्रथम मास माघ सुदी प्रतिपद् से आरंभ होता है। मास-गणना अमावस्यांत है, किंतु अधिक मास के एक साथ न पड़ने के कारण भारतीय मासों से मिलान नहीं रहता।

४–प्रत्येक रब्-ब्युङ् में अधि-मासवाले वर्ष और मास[1]

वर्ष-संवत्			मास	
संख्या	भोट नाम	भारतीय नाम	संख्या	नाम
३	भूमि-(स्त्री) सर्प	शुक्ल	९	मूषक
६	जल-(पुरुष) वानर	अंगिरा	३	अश्व
९	द्रुम-(स्त्री) शूकर	युवा	१२	शश
११	अग्नि-(स्त्री) सर्प	ईश्वर	८	शूकर
१४	लोह-(पुरुष) नाग	विक्रम	५	वानर
१७	जल-(स्त्री) मेष	सुभानु	१	नाग
१९	द्रुम-(स्त्री) पक्षी	पार्थिव	१०	वृष
२२	भूमि-(पुरुष) मूषक	सर्वधारी	१०	वृष
२५	लोह-(स्त्री) शश	खर	३	अश्व
२७	जल-(स्त्री) सर्प	विजय	१	नाग
३०	अग्नि-(पुरुष) वानर	दुर्मुख	८	शूकर
३३	भूमि-(स्त्री) शूकर	विकारी	४	मेष
३८	द्रुम-(पुरुष) नाग	क्रोधी	९	मूषक
४१	अग्नि-(स्त्री) मेष	प्लवंग	६	पक्षी
४४	लोह-(पुरुष) श्वा	साधारण	२	सर्प
४७	जल-(स्त्री) वृष	प्रमादी	३	अश्व
४८	द्रुम-(पुरुष) व्याघ्र	आनंद	११	व्याघ्र
४९	द्रुम-(स्त्री) शश	राक्षस	७	श्वा
५२	भूमि-(पुरुष) अश्व	कालयुक्त	४	मेष
५५	लोह-(स्त्री) पक्षी	दुर्मति	१२	शश
५७	जल-(स्त्री) शूकर	रुधिरोद्गारी	६	पक्षी
६०*	अग्नि-(पुरुष) व्याघ्र	क्षय	१०	वृष

[1] स-स्क्य (ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन् ११४६-१२१६ ई०), त, पृष्ठ २०३ ख।

* भोट पंचांग में प्रति तीसरे वर्ष अधिमास का नियम नहीं है, जैसा कि इस कोष्ठक से मालूम होगा।

५—भोट सम्राटों का काल

नाम	स-गृत्य तु*			स-सृत्य पु			ब्रु-स्तोन्			दे-गृ...			लद्दाख
	जन्म	गद्दी	मृत्यु	जन्म	गद्दी	मृत्यु	जन्म	गद्दी	मृत्यु	जन्म	गद्दी	मृत्यु	जन्म
ह्-युन्-सुगम्-पो	अग्नि-वृष			अग्नि-वृष	१३	[८१] भू-श्वा	अग्नि-वृष	१३	८२		[१०] भू-व्याघ्र	भू-श्वा	
	५५७ ई०			५५७		६३८	५५७				५५८	५७८	
स्रोङ्-मद्-युगन्	अग्नि-श्वा	१२	२७	अग्नि-श्वा	१३	[१२] जल-मूषक					१३	[४१] भू-शश	
	६२६			६२६		६५२						६१९	
लोद्	जल-पक्षी			जल-पक्षी		[२४] लोह-नाग						द्रुम-सर्प	
	६५२			६५२		७००						६४५	
मृदे-गृचुग्-युर्तन्	लोह-नाग		जल-अश्व	लोह-नाग		[११] जल-अश्व					द्रुम-सर्प	[११] द्रुम-मेष	
	६७०		७४२	६७०		७४२					६४५	७१५	
ठोद्-ग्दे-सृसुन्	लोह-अश्व		[५५] द्रुम-वृष	लोह-अश्व	[१३] जल-अश्व	[५५] द्रुम-वृष	भू-अश्व		६९		द्रुम-मेष	लोह-वानर	
	७३०	१३	७८५	७३०	७४२	७८५	७२८				६०५	७२०	
खि-सुगम-पो	जल-व्याघ्र			जल-अश्व	[१३] जल-व्याघ्र			जल-व्याघ्र	१७			अग्नि-वृष	
	७६२	१५		७५६	७६२			७६२				७९७	
मदे-ब्चन-पो		१५											



७—ञिँङ्-म-संप्रदाय की परंपरा

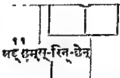
बुध
। [1] सारिपुत्र
। [1] राहुल
। [1] नागार्जुन

[11] मङ्-छ्मस्-रिन्-छेन्
(ग्यं-ऽदुल्-ऽज़िन्) [4] द्वङ्-फ्युग्-छुल्-खिम्स् [11]
- (मि) सूगोम्-प-स्मोन्-लम् (११७१ ई०)
- (श्य-छो) छुल्-ऽफगस् (१०९०-११७१ ई०)
- ब्यङ्-छुल्
- (मे-छो) ब्यङ्-दोर्
  - (ब्य-ऽदुल्) ब्चोन्-ऽबर्

(ग्यॆ) शाक्य-गोङ्
(स्तग्-लो) ग्त्सुग्-तोर्
(अ-मे) ग्रु-ग्रग्स्-...
- (खि-) सुवोन्-ब्रचोन्-ऽबर् (खि-छो)
- ग्शोन्-नु-शाक्य (स-छो)
- (नङ्-स्तोन्) छुङ्-ऽफगस् (अ-सेङ्-स्कोर्)

(द्र) शाक्य-योन्
(क्लि) ब्लो-ग्रोस्-ग्रग्स्
(माक्छु) ब्यङ्-छुब्—ब्यम्...
(माङ्ग्य) ब्यङ्-छुब्-ग्यल्-म...
(नो-ग) के-...
- (छो-ग्यल्) तोस्-रब्-ऽब्युङ्
- (गा-डो-चर्य-स्कोर् १०४० ई०)

(म्यि) थे-ग्रोस्-दुङ्-पो (ग...)
(ग्यु)



*बु-स्तोन् (ओबरमिलर) भाग २, पृ० १९०। [1]वही, पृ० १९६। [2]वही, पृ० १९७। [3]वही, पृ० १९८। [4]वही, पृ० १९९। [5]वही, पृ० २०१-२०२। [6]वही, पृ० २०२-२०३। [7]वही, पृ० २१०। [8]वही, पृ० २११। [9]वही, पृ० २१२। [10]ग-सूक्य-सूर्क-बुं, प २७२ क. [11]क्लोङ्-र्दल्-गसुं-ऽ बुं, च-६३ क [12]वही, ६५ क। [13]ऽब्रुग्-प-छोस्-ऽब्युङ्, ७३ ख। [14]वही, ५५ ख। [15]बु-स्तोन्-(ग्सुङ्-ऽबुम् छहुन्-पो) १४१ ग, १४२ क। [16]बु-स्तोन् (ओबरमिलर) भाग २, पृ० २०३-१०। [17]स्कोर्, और छो उपविभाग को कहते हैं, जैसे थङ्-स्कोर् और स-छो।

(ख्यु-ऽजुल्) ग्यूचोन्-ऽपर (जन्म १०९० ई०)

छोस्-क्यि-द्वङ्-स्युग्

छोस्-म्गोन्-रिन्-छेन्-द्पल्-ब्सङ्

(द्कऽ-ब्रुगि-) म्गोन्-प-ग्योन्-नु

- स्गो-फुग्-प (जन्म १०७४ ई०)
- रिन्-छेन्-ग्सोद्-नम्स्-म्गोन्
  - (बु- स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुप् (१२९०-१३६४ ई०)
  - (दुमर्-स्तोन्) ग्यं-म्छो-रिन्-छेन्
  - (घोड्-ख-प) ब्लो-ब्सङ्-ग्रगस्-प (१३५७-१४१९ ई०)

---

[1] क्लोङ्-र्दल-ग्सुं-ऽबुं ष, पृष्ठ ४१ क, ४२ क।

[2] वही, पृष्ठ ४३ क।

१०—स-स्क्य मठ (स्थापित १०७३ ई०) के संघराज

संख्या	नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
	[1] (ङखोन्)-दुकोन्-र्ग्यल्			
		१०३४ई०	१०७३	११०२
	[1] व-रि-लो-च-य		११०२	(११११)
[2]१	(स-छेन्) कुन्-दुगऽ-सृञिङ्-पो	जल-वानर		भू-व्याघ्र
		१०९२	११११	११५८ ई०
[3]२	(स्लोब्-दुपोन्) ब्सोद्-नमूस्-चे-मो	जल-श्वा		जल-व्याघ्र
		११४२	(११५८)	११८२
[4]३	(जें-च्चुन्) ग्रगूस्-प-र्ग्यल्-म्छन्	अग्नि-शश		अग्नि-मूषक
		११४७	(११८२)	१२१६
[1]४	(स-पण्) कुन्-दुगऽ-र्ग्यल्-म्छन्	जल-व्याघ्र		लोह-शूकर
		११८२	(१२१६)	१२५१
[1]५	ऽफग्स्-प-ब्लो-ग्रोस्-र्ग्यल्-म्छन्	१२३४	(१२५१)	१२८०
[1]६	धर्मपालरक्षित	१२६८	१२८०	१२८८
[1]७	(शर्-व) ऽजम्-द्बूयङ्स्-दोन्-र्ग्यन्	१२७६	१२८८	
[1]८	दम्-प-ब्सोद्-नमूस्-र्ग्यल् म्छन्	१३११	१३४२	

[1] 'जर्नल अव् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', (१८८९) में श्री शरचंद्र-दास का लेख ।

[2] स-स्क्य-ग्दं-र्बुं, क, ख ।   [3] स-स्क्य-ग्दं-र्बुं, ग, ङ, च, ।

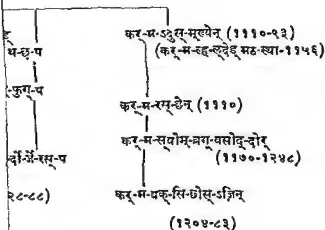
[4] वही, छ, ज, त ।   [5] वही, थ, द, न ।   [6] वही, प, फ, ब ।

११—स-स्क्य-वंशवृक्ष[1]

- (ऽखोन्) द्कोन्-र्ग्यल् (१०७३ ई०)
  - १—कुन्-द्गऽ-स्निङ्-पो (१०९२-११५८)
    - २—व्सोद्-नम्स्-चे-मो (११४२-८२)
      - ४—कुन्-द्गऽ-र्ग्यल्-म्छन् (११८२-१२५१)
      - सद्स्-छ-व्सोद्-र्ग्यन् (११८४-११३८)
        - ५—ऽफग्स्-प (१२३४-८०)
        - फ्यग्-न (१२३८-६७)
          - ६—धर्मपालरक्षित (१२६८-८८)
        - ये-ऽव्युङ् (१२३७-७४)
        - रिन्-प्रग्स्-र्ग्यन् (१२३७-७
          - (ये-ऽव्युङ् और रिन्-प्रग्स्-र्ग्यन् की सन्तान)
            - ९—कुन्-व्लो (१२९९-१३२७)
            - कुन्-र्ग्यन् (१३१०-५८)
              - १०—व्लो-र्ग्यन् (१३३२-५८)
              - छोस्-र्ग्यन् (ज.१३३२)
                - थेग्-छेन्-छोस्-र्ग्यल् (ज-१३४९)
            - ८—दम्-प (ज.१३११)
            - ७—ऽजम्-द्व्यङ् (ज.१२७
    - ३—ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन् (११४७-१२१६ ई०)
    - द्पल्-छेन्-ऽोद् (११५०-१२०३)

---

[1] 'जर्नल अव् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' १८८९ और स-स्क्य=थूर्क-ऽथुं के आ
पर। यहाँ शिष्यक्रम से नहीं बल्कि संतानक्रम से उत्तराधिकार मिलता है। गद्दी घर मे याद
जाय, इस लिए घर का एक व्यक्ति भिक्षु बना दिया जाता है, और वही संघराज होता है।



वाले रास्ते पर अवस्थित य-दोंग्-म्छो महासरोवर के पास है।
र स्तग् घे-ञोंङ् के भी पूर्व ब्रह्मपुत्र-उपत्यका में।

१३—'कर्-म-संघराज

संख्या	नाम	जन्म	मृत्यु	विशेष
	नारोपा (विक्रम शिला)		१०४०ई०	
	मर्-प-छोस्-क्यि-ब्लो-ग्रोस्[4]			
	मि-ल-रस्-प[4]	१०४०	११२३	१११०ई० में-मर्-प के पास गया।
	सुगम्-पो-(द्वगस्-पो)[2] लह्-जें[4]	१०७९	११५३	
	(कर्-म-)ऽदुस्-ग्सुम्-म्ख्येन्-प[3] [4]	१११०	११९३	
	” रस्-छेन्[4]			
१	” स्पोम्-व्रग्-ब्सोद्-दौर्[4]	११७०	१२४८	
२	” पक्-सि-छोस्-ऽज्ञिन्[4]	१२०४	१२८३	
३	” रङ्-ऽब्युङ्-दौर्जे	१२८४	१३३९	
४	” रोल्-व-दौर्जे	१३४०	१३८३	
५	” दे-व्शिन्-ग्शेग्स्-प	१३८४	१४१५	
६	” म्थोङ्-व-दोन-ल्दन्	१४१६	१४५३	
७	” छोस्-ग्रग्स्-र्ग्य-म्छो	१४५४	१५०३	
८	” मि-व्स्क्योद्-दौर्जे	१५०७	१५५४	
९	” द्वङ्-फ्युग्-दौर्जे	१५५६	१६०१	
१०	” छोस्-द्ब्यिङ्स्-दौर्जे	१६०४	१६७३	

[1] 'जर्नल अव् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' (१८८९) जिल्द ५८ (१) और फ्लोद्-र्दॆङ्-ग्सुं-ऽबुं, ग, पृष्ठ ८ क के आधार पर।

[2] द्वग्स्-पो मठ ११२१ ई० में स्थापित किया।

[3] इस ने निम्न मठों को स्थापित किया—ग्शु-म्ठुर्-ल्ह-ल्डुङ् (११५४ ई०), म्ठुर्-फु (११५९ ई०), कम्-पो-ग्नस्-नङ् (११६४ ई०), ऽत्शोद्-ग्नस्-गुग् (११६९ ई०), कर्-म-ल्ह-ल्दॆङ् (११८५ ई०)। ११२९ ई० में सुगम्-पो के पास गया।

[4] यहाँ तक शिष्य उत्तराधिकारी होता रहा, पीछे अवतारी उत्तराधिकारी

मालिक द्गऽ-त्सृदन्-संघराज

गद्दी	मृत्यु
	१४१९ ई०
१४१९	(१४३१)
१४३१	१४३८
	१४६२
१४६२	१४७३
१४७२	१४७८
	१४९१
१४९०	१४९२
	१४९८
१५००	१५११
१५१० ?	१५४०
	१५२९
१५२९	१५५४
१५३५	१५३९
१५३९	१५५३
	१५४०
५४८	१५५०
१५८	१५६७
	१५५९
४	१५६८

* ०१ स से लिए गए हैं।

* दीपंकर से चोङ्-ख-प तक देखो तिब्बत में चौरासी सिद्धों की परंपरा।

† कूलोङ्-द्रेल्-ग्सुं-ऽबुं सु, पृष्ठ ८० क।

‡ 'जर्नल अव् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', जिल्द '५८, भाग १। गिनने में १ वर्ष कम रक्खा है।

§ श्री शरच्चंद्रदास, डा० जार्ज हुथ और सर चार्ल्स बेल ने सन्

१५—चोङ्-ख-प की गद्दी के मालिक द्गऽ-ल्दन्-संघराज

नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
चोङ्-ख-प			१४१९ ई०
धर्म रिन्-छेन्		१४१९	(१४३१)
म्खस् ग्रुब-जे		१४३१	१४३८
ग्लो-ग्रोस्-छोस्-स्क्योङ्			१४६२
(ब-सो) छोस्-र्ग्यन्		१४६२	१४७३
ग्लो-र्ग्तन्		१४७२	१४७८
स्मोन्-लम्-द्पल्			१४९१
ग्लो-ब्सङ्-नि-म	१४२९	१४९०	१४९२
ये-ब्सङ्			१४९८
ऽद्र्-म्तोन्		१५००	१५११
रिन्-ऽोद्-प	१४५३	१५१७ ?	१५४०
चोस्-रय्-ऐगस्-ग्लो	१४५०		१५२९
ग्सोद्-ग्रगस्-प	४१७८	१५२९	१५५४
छोस्-स्क्योङ्-र्ग्य-म्छो	१४७३	१५३५	१५३९
(मि-ञग्) दीर्-ग्रगस्	१४९१	१५३९	१५५३
छोस्-ग्दोम्	१४५३		१५४०
[1] र्ग्यन्-ग्रगस्	१४९७		
दग्-द्वङ्-छोस्-ग्रगस्	१५०१	१५४८	१५५०
(ऽोल्-दगऽ) द्गे-लेगस्-द्पल्	१५०५	१५५८	१५६७
छोस्-ग्रग्स्-ग्रगस्	१४९३		१५५९
द्गे-ऽदुन्-ग्सलन्-स्र्	१४९३	१५६४	१५६८

[1] यह नाम ब्लोड्-र्ग्न् (जन्म १७१९ ई०) ग्सुं-ऽबुं गु पृष्ठ ७१ ग से लिए गए हैं। यानी राय बहादुर शरच्चंद्रदास के लेख से।

नाम	जन्म	गद्दी
छे-तॅन्-र्ग्य-म्छो	१५२०	१५६८
ब्यम्स्-प-र्ग्य-म्छो	१५१६	१५७५
द्पल्-ऽब्योर्-र्ग्य-म्छो	१५२६	१५८२
दम्-छोस्-(द्पल्-ऽबर्)	१५२३	१५८९
कुगे-ऽदुन्-र्ग्यल्-म्छन्	१५३२	
सङ्स्-र्ग्यस्-रिन्-छेन्	१५४०	१५९६
ङग्-र्ग्यन्		१६०३
छोस्-ग्येर्-ग्रोस्-म्ञेन्-ग्रग्स्	१५४६	१६०७
(सूतग्-ब्रग्) ब्लो-र्ग्य-म्छो	१५४६	१६१५
दम्-छोस्-द्पल्	१५४६	१६१८
(छुल् खिम्स्) छोस्-ऽफेल्	१५६१	१६१९
ग्रग्स्-प-र्ग्य-म्छो	१५५५	१६२३
(ङग्) छोस्-किय-र्ग्यल्-म्छन्		
द्कोन्-म्छोग्-छोस्-ऽफेल्	१५७३	१६२६
(कोङ्-पो) ब्स्तन्-ऽज़िन्-लेग्स्-ब्शद्		१६३०
जॅं-दुगे		१६३७
(ह्रग्स-पो) ब्स्तन्-प-र्ग्यल्-म्छन्		१६४३
द्कोन्-म्छोग्-छोस्-ब्सङ्		१६४८
द्पल्-ल्दन्-र्ग्यल्-म्छन्		१६५४
ब्लो ब्ज़ङ्-र्ग्यल्-म्छन्		१६६२
ब्लो-ब्ज़ङ्-दोन्-योद्	१६०२	१६६८
[1] ब्लो-ब्ज़ङ्-दम्-र्ग्यल्		
ब्यम्स्-प-ब्क्र-शिस्	१६१८	१६७५
ब्लो-ब्सङ्-नोर्-बु		
क्लु-ऽबुम्-र्ग्य-म्छो		१६८२
[1] ब्लो-ग्रोस्-र्ग्य-म्छो	१६३५	१६८५
(बो-नस्) स्-छुल्-खिम्स्-दर्-र्ग्य		१६८५

---

[1] यह नाम क्लो[illegible]

पृष्ठ

नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
(य्सम्-ग्लो) ब्यिन्-प-र्ग्य-म्छो		१६९२	
(चो-तस्) ग्रुल्-दर्		१६९५	
दोन्-योद्-र्ग्य-म्छो		१७०१	
[१] द्पल्-ऽब्योर्-र्ग्यल्-म्छन्			
[१] दोन्-ग्रुब्-र्ग्य-म्छो			
[१] (ब्य-म्ल्) द्गे-ऽदुन्-फुन्-छोग्स्			
[१] ह्ग्-द्वङ्-म्छोग्-ल्दन्			

---

[१] यह नाम बु-स्तोन्-रिन्-छेन् (जन्म १०१९ ई०) ग्सुङ्-ऽबुम् प, पृष्ठ ७१ क से लिए गए हैं। पत्री राय बहादुर शरच्चन्द्रदास के लेख में।

१६—बौद्धविद्वान और उनके आश्रयदाता आदि

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-चु-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
	आरंभ-युग (५८०-७६३)		
५७०-६३८	स्रोङ्-ब्चन्-स्गम्-पो	देवविद्यासिंह	थोन्-मि अ-नुऽि-नु
		शंकर (ब्राह्मण)	धर्मकोष
		शीलमंजु (नेपाली)	(ह्वशङ्) महादेव
			(ल्ह-लुङ्) दौं-जें-द्पल्
६७०-७४२	(ख्रि) ल्दे-ग्चुग्-ब्र्तन्		(ब्लन्-क) मूलकोष
			(ह्ग्) ज्ञानकुमार
	शांतरक्षित-युग (७६३-९८२)		
७४२-८५	(ख्रि) स्रोङ्-ल्दे-ब्र्चन्	अनंत	सङ्-शि (चीनी)
		शांतरक्षित	मे (चीनी)
		पद्मसंभव	गो (चीनी)
		कमलशील	द्पल्-ग्यि-सेङ्गे
		सुरेंद्राकर प्रभ	ये-शेस्-द्बङ्-पो
			(लो) ज्ञानकुमार
		शीलधर्म (लो)	
		धर्मकीर्ति	(स्न-नम्) दौं-जें-म्दुङ्-ऽ ओम्स्
		विमलमित्र	नैम्-म्खऽ-स्क्योङ्
		ज्ञानगर्भ	(ल्चे) ज्ञानसिद्धि
			(ह्वशङ्) महायान
			(चिम्) शाक्यप्रभ
			(प-गोर्) वैरोचनरक्षित

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
			(थङ्-ति) जयरक्षित
			फ्लुङि-द्वङ्-पो
			(शुद्-पु) श्रीसिंह
			(र्ग) मंजुश्री
७८७-८१७	(ख्रि) ल्दे-(स्रोङ्)-य्चन्-पो	(अपरांतक) जिनमित्र	(चङ्) देवेंद्र
		सुरेंद्रबोधि	(खङ्) कुमुदिक
		शीलेंद्रबोधि	(ङवोन्) नागेंद्ररक्षित
		दानशील	लेग्स्-पडि-ब्लो-ग्रोस्
		बोधिमित्र	(म-आचार्य) रिन्-छेन्-म्छोग्
		विद्याकरसिंह (० प्रभ)	
		मंजुश्रीवर्म	
		विद्याकरसिद्ध	(धन्-दे) नंम्-पर्-मि-तोंग्
		धर्मश्रीप्रभ	ग्लङ्-क-तन्
		सर्वज्ञदेव	(प्य) त्रि-ग्जिग्स्
			(र्म) ल्यि-दोर्
		धर्माकर	सङ्-शि
		शाक्यसिंह	(ल्चङ्) लेग्स्-ग्रुप्
		सर्वज्ञ देव	छोस्-ग्यि-स्नङ्-व
		विद्याकरप्रभ	(स्गो) रिन्-छेन्-स्दे
		बुद्धगुह्य	(धन्-दे) द्पल्-ब्र्चेग्स्
		शांतिगर्भ	(धन्-दे) कुलुङि-द्वङ्-पो
		(कश्मीरी) जिनमित्र	(शङ्) ग्यंल्-मन्-अ-ग्रुङ्
			(ल्चे) ल्यि-ङ्ग्रुग्
			देवचंद्र
			द्पल्-ग्यि-ल्हुन्-पो
			द्पल्-ग्यि-द्ब्यङ्स्
			ब्लोन्-ग्सि-ब्लोङ्
			रत्नरक्षित
			धर्मताशील
			जयरक्षित

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च्-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
			रत्नेंद्रशील
८१७-८४१	(खि) रल्-प चन्	शाक्यसेन	दुगे-वडि-द्पल्
		ज्ञानसिद्ध	(पन्-दे) योन्-तन्-द्पल्
		मुनिवर्म	(स्न-नम्) ये-शेस्-स्दे
		शाक्यप्रभ	(चोग्-रो) क्लुइ-र्ग्यल्-म्छन्
		ज्ञानगर्भ	(गोस्) छोस्-मुय्
		विशुद्धसिंह	धर्मालोक
		प्रज्ञावर्म	क्लुइ-द्बङ्-पो
			ये-शेस्-द्पल्
			(पन् दे) नंम्-म्खऽ
			ये-शेस्-स्ञ्-शुग्
			सेंग्-ऽज़िन्
			(मङ्) ये-शेस्
			ये-शेम्-स्निङ्-पो
			ये-शेस्-स्दे
			देवेन्द्र
			कुमाररश्मि
८४१-४२	(ग्लङ्) दर्-म		(स्ह-लुङ्) द्पल्-र्दो-र्जे
			तिङ्-ङे-ऽज़िन-ब्सङ्-पो
			(म) रिन्-छेन्-म्छोग्
			(चङ्) रब्-ग्सल्
			(ग्यो) द्गे-ऽब्युङ्
			(स्तोद्-लुङ्-स्मर्) शाक्यमुनि
			ख्रि-र-ल्पेद्-प

दीपंकर-युग (१०४२-११०२)

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च्-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
१०००	ये-शेम्-ऽोद्	श्रद्धाकरवर्म	रिन्-छेन्-ब्सङ् पो (९५८-१०५५)
		जनार्दन	ल्हेग्स्-पऽि-शेस्-रब्
		पद्माकरगुप्त (० वर्म)	द्पल्-ऽब्योर्
		सुभाषित	(शिद्-मो-छे) ब्यङ्-छुब्-सेङ्-गे
		बुद्धश्रीशांति	द्गे-बऽि-ब्लो-ग्रोस्

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़्-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		बुद्धपाल	(ग्यि-चो) स्-वङ्-ऽोद्-.सेर् (१०२७)
		कमलगुप्त	(स्म्रो) शेस्-रब्-ग्रग्स्
		करुणा (ज्ञान) श्रीभद्र	शाक्य-ब्लो-ग्रोस्
		सोमनाथ (कश्मीरी) (१०२७)	(ग्लोग्-सक्य) शेस्-रब्-बर्चोंग्स्
		धर्मपाल	(मल्-ग्यो) ब्लो-ग्रोस्-ग्रग्स्-प
		कनकश्रीमित्र	ग्शोन्-ग्रग्स्
		प्रज्ञापाल	द्गे-बइ-लेग्स्-प
		कुमारकलश	छुल्-ख्रिम्स्-योन्-तन्
		धर्मश्रीवर्म	(ख्योग्-मि) शाक्य-ये-शेस् (मृत्यु १०७३)
		प्रेतक	
		स्मृतिज्ञानकीर्ति	
		सूक्ष्मदीर्घ	
		पद्मरुचि	
		गंगाधर	
		धर्मश्रीभद्र	
		गयाधर	
	ल्ह-ल्दे (राजा)	सुभाषित	
	ऽोद्-ल्दे (राजा)	सुनयश्री	(ह्न्) दर्-म-ग्रग्स्
		मति	(शङ्-द्बङ) ऽफग्स्-पऽि-शेस्-रब्
		आरण्यक (कश्मीरी)	
		तेजोदेव	
		परिहितभद्र	
१०४२	ब्यङ्-छुब्-ऽोद्	दीपंकरश्रीज्ञान	रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो
		महाजन	ग्शोन्-नु-मछोग्
		कुमारकलश	(नग्-छो) छुल्-ख्रिम्स्-र्ग्यल्-ब
		कृष्णपंडित	(से-र्च) ब्सोद्-नम्स्-र्ग्यल्
		शांतिभद्र (नेपाली)	(र्गं-) ब्र्शोन्-ऽग्रुस्-सेङ्-गे (मृत्यु १०६१)

समय	भोटदेश का प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च-व (दुभाषिया) का प्रधान धार्मिक नेता
		सज्जन (कश्मीरी)	(ङग्-ल्दोग्) शेस्-रब्-ङग
		सोमनाथ (कश्मीरी)	डोग्-ग्रग्स्
		अनंत	(अमो-मेद्-द्वग्) शाक्य-ओद्
		देवेंद्र	(अगोस्-ख्रग्-प) ल्हस्-ब्चस्
		चंद्रकुमार	(जि-थो) ब्-वदि-ओद्-सेर्-ग्स
		दिवाकर	(सोग्-पो) ग्री-ग्रे-स्ग्रग्-ग्सुग्
		भागीरथीभद्र	शाक्य-से-ङोग्
		अनंतश्री (नेपाली)	द्गे-बदि-ब्लो-ग्रोस्
		कुमारश्रीमित्र	
		गयाधर	
		चन्द्र	
		शुभशांति	
		सुभूतिश्री (शांति)	
		महाजन (कश्मीरी)	
	ज़ि-ब-ओद्	सुजनश्रीज्ञान	ज़ि-ब-ओद्
		गुणाकरश्रीभद्र	(अमो-मेद्-द्वग्) शाक्य-ओद्
		संघकलश	(ग्नुग्-ग्सुङ्) ब्सद्-ग्रुब्-दोग्-ग्सग्
		दीपंकररक्षित	
१०७६	र्चे-ल्दे (राजा)	ज्ञानश्री	(ऋ-ग्लोद्-मे) छोग्-ज्वग् (१०४२-८९)
		निष्कलंक	(र्ङोग्) ब्लो-ल्दन्-शेस्-रब (१०५९-१२०८)
		सुमतिकीर्ति	(ख्यद्-पो) छोस्-ग्रोन्
		चंद्रराहुल	(पोग्-मु) तिङ्-ङे-ऽज़िन्-ब्सङ्-पो
		अतुलदास	(ख्युंग्) समोन्-लम्-ग्रग्स्
		मनोरथ (कश्मीरी)	
		परहितभद्र	
		ज्ञानश्रीमित्र	
		भव्यराज (कश्मीरी)	

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		सुभूतिघोष	
	द्वङ्-ल्दे (राजा)	भव्यराज (कश्मीरी)	(ङोग्) ब्लो-ल्दन्-शेस्-रब् (१०५९-११०८)
	पूक-शिग्-ल्दे-द्वङ्-फ्युग् (राजा)	तिलककलश	(मर्-प) छोस्-क्यि-द्वङ्-फ्युग-ग्रग्स्
		स्थिरपाल	(ऽब्रोग्-मि) शाक्य-ये-शेस्
		कनकवर्म (कश्मीरी)	रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो (९५८-१०५५)
		जयानंत	(ग-म) सेङ्-गे-र्ग्यल्
		अतुलदास	(क्लोग्-स्क्य) ग्शोन्-नु-ऽबर
		सुमतिकीर्ति	(स्म-ब्सम्-ग्युर) दढ्-पऽि-शेस्-रब्
		अमरचंद्र	(मर्-प) छोस्-क्यि-ब्लो-ग्रोस्
		कुमारकलश	(प-छब्) जि-म-ग्रग्स् (जन्म १०५५)
		धर्मश्रीभद्र	
		बुद्धश्रीशांति	
		नाडपाद (नारोपा मृत्यु १०४०)	
		मैत्रीपाद	
		शांतिभद्र	

स-स्क्य-युग (११०२-१३७६)

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
११०२-११११	(स-स्क्य) ब-रि-लो-च-व	मंजुश्री	ब-रि-लो-च-व
		अभयाकरगुप्त (मृत्यु ११२५)	(पन्-दे) शेस्-रब्-द्पल्
		वज्रपाणि (१०६६)	(ग्ञन्-ऽजोर्) ब्लो-ग्र स्
		बुद्धाकरवर्म	(ले-मंद्) ऽब्योर्-लो-ग्रग्स्
		कृष्ण	(ग्नुब्) धर्म-ग्रग्स्
		फन्-दग्-प (मृत्यु १११८)	(स्पोंद्-ओ) ग्सल्-व ग्रग्स्

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		विनयचंद्र	छोम्-क्यि-शेस्-रब्
			(प्योड्-स-मि-अग्) स-स्कि
			सड्स्-र्ग्यस्-ग्रग्स्
			(स्प्रो-पो) दोम्-रब्-द्पल् (जन्म १०५९)
			योम्-प ह्गाऽ
			(र्मे-यन्) छोम्-ऽबर्
११११-४८	(स-स्क्य) कुन्-ह्गाऽ-स्निङ्-पो	अलंकदेव	(मृकु( ) ये-शेस्-ऽब्युङ्-ग्नस्
			(स्नेद्-प) कुल्-ख्रिम्स्-ऽब्युङ्-ग्नस् (११०६-९०)
		महाकारुणिक	(र्ग्य) दों-ज-ग्रग्स्
		शून्यतासमाधि	(द्प्यल्) कुन्-ह्गाऽ-दों-र्जे
		अमोघवज्र	(दड्-दु) द्पल्-पो
		सर्मनश्री	फुर्-बु-ऽोद्
			(फग्-रि) रिन्-छेन्-ग्र्ग्स
			(र्ग्य) छोस्-रब्
			(शड्) शेस्-रब्-ब्ल-म (मृत्यु ११७०)
११८२-१२१६	(स-स्क्य) ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन्	सर्वज्ञश्री	ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन्
		अनंतश्री (सिंहल)	(र्मं) लो-च-व (जन्म ११६०)
		धर्मधर	स्पड्-छुब्-ऽडुम्
		कीर्तिचंद्र	(शड्) लो-च-व (मृत्यु ११७०)
		जगन्मित्रानंद (मित्रपा, ११९८)	(यर्-लुड्) ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन्
		लक्ष्मीकर	
			(ग्नुयस्) छुल्-ख्रिम्स्-शेस्-रब्
			(शोङ्-स्तोन्) दों-र्जे-र्ग्यल्-म्छन्
१२१६-५१	(स-स्क्य) कुन्-द्गाऽ-र्ग्यल्-म्छन्	बुद्धश्रीज्ञान (१२००)	(खो-फु) ब्यम्स्-पऽि-द्पल् (जन्म ११७३)
			(चल्) छोस्-ग्रुङ्-पो

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़्-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५)	(ख्य-सुल्) लो-च़् व (१२०१)
		विभूतिचंद्र (१२०४) (जगत्तल)	(रोङ्-र्मो) नैम्-र्ग्यल्-र्दो-र्जे
		दानशील (१२०४)	(र्ग) र्दो-र्जे-द्पल्
		संघश्री (नेपाली, १२०४)	(छ्ग) द्ग्र-ब्चोम्-र्ते-ऽु (११५३-१२१६)
		सुगतश्री (१२०४)	.छुल्-ख्रिम्स्-र्ग्यल्-म्छन्
		विनयश्री	.छुल्-ख्रिम्स्-सेङ्-गे
		धर्मधर	(म्पङ्स्) ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन्
		रत्नश्री	
		वज्रासनपाद	
		निष्कलंक	
	स्क्य) ऽफग्स्-प	सुधनरक्षित	(श्र-मर्) सेङ्-र्ग्यल्
		मणिभद्ररक्षित	(य-मोग्-ग्यि-मर्-प) छोस्-क्यि-ब्यङ्-पो
		लक्ष्मीश्री (नेपाली)	(छर्) छोस्-र्जे-द्पल् (मृत्यु १२६५)
		लक्ष्मीकर	देवेंद्र
			रत्नरक्षित
			(थोङ्-स्तोन्) र्दो-र्जे-र्ग्यल्-म्छन्
			ब्लो-ग्रोस्-तेन्-प
१२८०-८८	(स-स्क्य) धर्मपालरक्षित		(स्तग्) शाक्य-ब्सङ्-पो (जन्म १२६२)
			(मि-ञग्) लो-च़्-व (मृत्यु १२८२)
१२९०-१३६४	(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब्	कीर्तिचंद्र	(शेल्-द्कर्) ब्यङ्-छुब्-चे-मो-ब्लो-ब्र्तन्-द्पोन्-पो (१३०२-८०)
		धर्मश्रीभद्र (?)	(जो-नङ्) शेर्-र्ग्यन् (मृत्यु १३६१)
		धर्मधर	छोस्-र्जे-द्पल्
		सुमनश्री (कश्मीर)	जि-म-र्ग्यल्-म्छन्-द्पल्-ब्सङ्-पो

समय	[illegible] प्रधान भूमि	भारतीय पंडित	लो-च-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		माणिकश्री	(म्पा-स) ब्लो-ग्रोस्-ग्र्ग्य-ल्-म्छन्
			(ग्पल्) छोस्-क्यि-ब्सङ्-पो
			(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब्

फग्-मो-ग्रु-प-युग (१३७६-१६६४)

समय		भारतीय पंडित	लो-च-व
१३५१ १-६१	([illegible]) ब्लो- [illegible]	वनरत्न (१३८४-१४६८)	(ड्गोन्) ग्सिङ्-ग्रुग्स्-ग्यै (जन्म १३९२)
			ग्झोन्-नु-द्पल्
			(स्तग्) शोस्-ग्यु-रिन्-छेन् (जन्म १४०५)
			शोस्-ग्यु-र्यल् (जन्म १४२६)
१५२१-२६	(श-लु) धर्मपालभद्र		(श-लु) रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो (१४८' १५६३)
			रिन्-छेन्-पस-निम्-द्पल्-ब्सङ्- (१५२६)
			(स्तग्-छुङ्) कुन्-ग्क (१५५५
१५७५ जन्म	(ग्यंल्-खम्स्) कुन्-दगा-स्ञिङ्-पो (लामा तारानाथ)	कृष्णभट्ट	तारानाथ
१६१७-८२	(दलाईलामा) ब्लो-ब्सङ्-र्ग्य-म्छो [1]	बलभद्र (कुरुक्षेत्र)	कुन्-ग्रोल् ल्हुन्-ग्रुब् (१६६४)
		गोकुलनाथमिश्र	
		कृष्ण (कुरुक्षेत्र)	
		गौतमभारती	
		ओंकारभारती	
		उत्तमगिरि	

---

[1] लो-च-व और पंडित को एक पंक्ति में रखने में काल का ध्यान नहीं रक्खा गया है गुरु को छोड कर बाकी पंडित स्वयं तिब्बत में गए थे।

१७–तिब्बत में भारतीय ग्रंथों के कुछ प्रधान अनुवादक, उनके सहायक और ग्रंथ

काल	अनुवादक	सहायक, या सम-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
		शांतरक्षित-युग (८२३-१०४२)		
५	शांतरक्षित	धर्मालोक	हेतुचक्र	दिङ्-नाग
५	पद्मसंभव	वैरोचन	वज्रमंत्रसंग्रह	
		दूपल्-ग्यि-सेङ्-गे	डाकिनीजिह्वाजालतंत्र	
	विमलमित्र	(यन्-दे) ज्ञानकुमार	वज्रसत्त्वमायाजालगुह्य-सर्वादर्शतंत्र	
		नम्-म्खऽ-स्क्योङ्	सप्तशतिका प्रज्ञा-पारमिता-टीका	कमलशील
		रिन्-छेन्-म्दे	प्रज्ञापारमिताहृदयटीका	विमलमित्र
	सुरेंद्राकरप्रभ (लो-चावा)	नम्-म्खऽ-स्क्योङ्	प्रतीत्यसमुत्पाद-व्याख्या	वसुबंधु
		शील धर्म (लो) ?		
	ज्ञानगर्भ	नम्-म्खऽ-स्क्योङ्	संबंध-परीक्षा	धर्मकीर्ति
८१४	जिनमित्र	सुरेंद्रबोधि	शतसाहस्रिकाप्रज्ञा-पारमिता	
		प्रज्ञावर्म	दशसाहस्रिकाप्रज्ञा-पारमिता	
		दानशील		
		मुनिवर्म	तथागताऽचिन्त्यगुह्यनिर्देश	
		शीलेंद्रबोधि		

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
		ज्ञानगर्भ		
		शाक्यप्रभ		
		शाक्यसेन		
		धर्मपाल	ब्रह्मविशेषचिंता-परिपृच्छा-सूत्र	
		ज्ञानसिद्ध		
		मंजुश्रीवर्म		
		रत्नेंद्रशील		
		ये-शेस्-स्दे	युक्तिषष्ठिका-वृत्ति	चंद्रकीर्ति
		,,	न्याय-बिंदु-टीका	विनीतदेव
		देवेंद्ररक्षित (लोचव)	सिद्धसार (वैद्यक)	
		(क-व) द्पल्-ब्र्चेग्स्	अभिधर्मकोश	वसुबंधु
		जयरक्षित		
		देवचंद्र	त्रिधर्मकसूत्र	
		रत्नरक्षित	महाव्युत्पत्ति (८७४)	
८१४	(ञाङ्) ये-शेस्-स्दे	जिनमित्र	अभिधर्मसमुच्चय	असंग
		सुरेंद्रबोधि	गयशीर्ष-सूत्र-व्याख्या	वसुबंधु
		शीलेंद्रबोधि	मध्यमकालंकार-पंजिका	कमलशील
			महायानसंग्रह	असंग
		प्रज्ञावर्म	मध्यमकालंकार	शांतरक्षित
		दानशील	शिक्षासमुच्चय	शांतिदेव
		मुनिवर्म	श्रामणेरकारिका	नागार्जुन
		मंजुश्रीगर्भ (० वर्म)	दशभूमिक-व्याख्यान	वसुबंधु
		विजयशील	धर्मसंगीति-सूत्र	
		ज्ञानसिद्धि	बोधिदिङ्निर्देश	
८००	धर्मताशील (लो-च-व)	शाक्यसेन	अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता	
		देवेंद्ररक्षित (लो०)		
		कुमाररक्षित (लो०)		

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
		शाक्यप्रभ	ब्रह्मविशेषचिंतापरिपृच्छा	
		धर्मपाल		
		जिनमित्र		
		सुरेंद्रबोधि	सर्वधर्मसमता-विपंचित-समाधिराज-सूत्र	
		शीलेंद्रबोधि		
	(ह्व-शङ्)स्व्-मो	र्नम्-पर्-मि-र्तोग्-प	समाधि-प्रतिकूल	(चीनीभाषासे)
	(क-व) द्पल्-ब्र्त्सेग्स्	विद्याकरसिंह (० सिद्ध)	संचयगाथापंजिका	बुद्धश्रीज्ञान
		शाक्यसिंह	सूत्रालंकार	मैत्रेयनाथ
		,,	सूत्रालंकार-भाष्य	असंग
		विद्याकरप्रभ	मध्यमकनयसारसमासप्रकरण	विद्याकरप्रभ
		विशुद्धसिंह	अभिधर्मकोश-टीका (स्फुटार्था)	यशोमित्र
		जिनमित्र	अभिधर्मकोश-भाष्य	वसुबंधु
		दानशील	बुद्धाऽनुस्मृति-टीका	वसुबंधु
		प्रज्ञावर्म	हेतुबिंदु	धर्मकीर्ति
		ज्ञानगर्भ	भद्रचर्याप्रणिधान-टीका	अलंकारभद्र
		सर्वज्ञदेव	स्खलितप्रमर्दन	आर्यदेव
		,,	बोधिचर्यावतार	शांतिदेव।
		धर्माकर	विनयप्रश्नकारिका	कल्याणमित्र
		शीलेंद्रबोधि	महावैरोचनाभिसंबोधि-सूत्र	
		प्रज्ञाकरवर्मा	हेतुबिंदु-टीका	विनीतदेव
		विद्याप्रभाकर (?)		
		शुद्धसिंह	रत्नचंद्रपरिपृच्छा	
		द्पल्-ग्यि-ल्हुन्-पो	द्रुमकिन्नरराजपरिपृच्छा	
		ये-शेस्-स्ञिङ्-पो	रत्नजालिपरिपृच्छा	
		ध्सङ्-स्क्योङ्	सूर्यगर्भ[illegible]-सूत्र	
		द्पल्-द्ब्यङ्स्-स्*	भद्र[illegible]	
		रिन्-छेन्-म्छोग्*	[illegible]	
	(चोग्-र) क्लुइ-र्ग्यल्-म्छन्	विशुद्धसिंह		
		ज्ञानगर्भ		
		प्रज्ञावर्म (० गर्भ)	[illegible]-कारिका	
			[illegible]	

काल	अनुवादक	सहायक, या राज-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
		सर्वज्ञदेव (कश्मीरी)	"	मध्य(म विवेक)
		जिनमित्र (मूल सर्वास्तिवादी)	प्रातिमोक्ष-सूत्र-टीका	
		"	विनयविभंग-टीका	विनीतदेव
		"	विनय-सूत्र-टीका	धर्ममित्र
		(छुंद्स्) शैलेन्द्ररक्षित		

दीपंकर-युग (१०४२-११०२)

काल	अनुवादक	सहायक, या राज-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
९५८-१०५४	रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो	सुभाषित	अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता	
		दीपंकरश्रीज्ञान	त्रिशरणसप्ततिका	चंद्रकीर्ति
		कमलगुप्त	विमलप्रश्नोत्तररत्नमाला	अमोघवर्ष (राजा)
		धर्मश्रीभद्र	ध्यान-षड्-धर्म-व्यवस्थान-वृत्ति	दानशील
		पद्माकरश्रीज्ञान	अभिधानोत्तर-तंत्र	
		श्रद्धाकरवर्मा	हस्तवालप्रकरण	आर्यदेव
		पद्माकरवर्मा	परमार्थबोधिचित्तभावना	अश्वघोष
		शुभशान्ति	अभिसमयालंकारालोक	हरिभद्र
		जनार्दन	अष्टांगहृदय-संहिता	नागार्जुन
		गंगाधर	सप्तगुणपरिवर्णनकथा	वसुबंधु
		बुद्धभद्र	चतुर्विपर्ययकथा	मति-चित्र (मातृचेट)
		बुद्धश्रीशान्ति	अश्वायुर्वेद	शालिहोत्र
		खुल्-खिम्स्-योन्-तन्	सुमागधावदान	
		ब्लो-ल्दन्-शेस्-रब्		
९८२-१०५४	दीपंकरश्रीज्ञान	रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो	त्रिशरणसप्ततिका	चंद्रकीर्ति
		द्गे-बा-ब्लो-ग्रोस्	बोधिपथप्रदीप	दीपंकरश्रीज्ञान
		शाक्य-ब्लो-ग्रोस्	समाधिसंवरपरिवर्त	"

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
		ड्योम्-स्तोन्	विमलरश्मिविशुद्धप्रभा-धारणी	
		(र्ग्य) व्र्योन्-ग्रुस्-सेङ्-गे	मध्यमकरत्नप्रदीप	भाव्य (भाव-विवेक)
		(नग्-छो) छुल्-ख्रिम्स्-र्ग्यल्-व	मध्यमक-हृदय	,,
		,,	मध्यमक वृत्ति	,,
		ग्शोन्-नु-मछोग्		
		शेस्-रब्-ग्रग्स्		
	ङि-ग्लो-ग्रोस्	बुद्धशांति		
		सुभूतिश्रीशांति		
		करुणा(ज्ञान)श्रीभद्र		
		श्री कुमार	बोधिसत्वचर्यावतार-संस्कार	कल्याणदेव
		दीपंकरश्रीज्ञान	अवलोकितेश्वर-परिपृच्छा-सप्तधर्मक	
१०२७	सोमनाथ	शेस्-रब्-ग्रग्स्	कालचक्रतंत्र	
१०७४ मृत्यु	(ड्रोग्-मि) शाक्य-ये-शेस्	गयाधर	संपुटीतंत्र	
		अमोघवज्र		
		प्रज्ञागुह्य		
	गयाधर	(ग्य-जो) स-यङ्-ओद्-ग्र्रेर्-ल	बुद्धकपालयोगिनी-तंत्र	
		(ड्रोम्-खुग्-प) ल्ह-व्चस्	वज्रडाकतंत्र	
		(ड्रोग्-मि) शाक्य-ये-शेस्	हेवज्रतंत्रराज	
	ग्शि-व-ओद्	सुजनश्रीज्ञान		
		मंत्रकलश	परमादिमहायानकल्पराज	
		गुणाकरभद्र		

साल, स्थान	अनुवादक	सहायक, या भारतीय पंडित	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
११०१ शरु (टीपू) ल्हो-	ल्हुन-सेरू-गृ	अमरगोमी	अभिसमयालंकारवृत्ति	प्रज्ञाकरमति
		दीपंकरश्रीज्ञान	अभिसमयालंकारालोक[1]	हरिभद्र
		मनोरथ	अपोहसिद्धि	शंकरानंद (ब्राह्मण)
		कुमारश्रीभद्र		
		तिलकलश		
		सुमतिकीर्ति	भद्रचर्याप्रणिधानव्याख्या	नागार्जुन
			बोधिचित्तोत्पादसमादानविधि	जेतारि
		अमृतदास[1]		
		शांतिभद्र	त्रिसंवरक्रम	(भतरितज्ञ)
		महाजन (कश्मीरी)	धर्मधर्मताविभंगवृत्ति	वसुबंधु
		सज्जन	महायानोत्तरतंत्रव्याख्या	असंग
		मंजुश्रीवर्म	अमोघपाशषट्पारमि-साधारणी	
		अभयराज		
		परहितभद्र	अपोहप्रकरण	धर्मोत्तर
		,,	न्यायबिंदु	धर्मकीर्ति
			प्रमाणविनिश्चय	,,
१०५५ जन्म (प-छप्) नि-म-	ग्रग्स्	पुण्यसंभव		
		मुदितश्री	अपरिमितायुर्ज्ञानहृदय-धारणी	
		सूक्ष्मज्ञान	युक्तिषष्टिकाकारिका	नागार्जुन
		तिलकलश	चतुःशतकशास्त्र	आर्यदेव
		कनकवर्म	मध्यमकावतार-भाष्य	चंद्रकीर्ति
			अभिधर्मकोशटीका (लक्षणानुसारिणी)	(पूर्णवर्द्धन)
		हसुमति	मूलमध्यमकवृत्ति (प्रसन्नपदा)	चंद्रकीर्ति
		अजितश्रीभद्र	अष्टाक्षणकथा	अश्वघोष

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
	(ङो-सेङ्-दुकर्) शाक्य-ओद्	शांतिभद्र (नेपाली)	विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि	रत्नाकरशांति
		कुमारकलश	मध्यमकालंकारवृत्ति	,,
		चंद्रकुमार	महायानविंशिका	नागार्जुन
		रुद्र	सुभाषितरत्नकरंड	(महाकवि) हर्ष
		अनंतश्री (नेपाली)	कार्यकारणभावसिद्धि	ज्ञानश्रीमित्र
		छोस्-किय-शेस्-रब् (मर्-प-) छोस्-किय-द्वङ्-फ्युग्		

स-स्क्य-युग (११०२-१३१६)

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
११०६-९०	छुल्-खिम्स्-ऽब्युङ्-ग्नस्	अलंकदेव	विनयसूत्रव्याख्या	प्रज्ञाकर
		,,	जातकमाला	हरिभद्र
११८२-१२१०	(यर्-लुङ्-प) ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन्	धर्मधर	प्रतिमामानलक्षण	आत्रेय
		कीर्तिचंद्र	लोकानंदनाटक	चंद्रगोमी
		,,	अमरकोष	अमरसिंह
		,,	,, टीका (कामधेनु)	सुभूतिचंद्र
११७३ जन्म	(खो-फु) ब्यम्स्-पडि-दुपल्	जगन्मित्रानंद (मित्रयोगी)	चतुरंगधर्मचर्या	जगन्मित्रानंद
		शाक्यश्रीभद्र	महायानोपदेशगाथा	शाक्यश्रीभद्र
११२७-१२२५	शाक्यश्रीभद्र	(खो-फु-) ब्यम्स्-पडि-दुपल्	महायानधर्मचर्यावतार	शाक्यश्रीभद्र
		दुम-ग्योम्	बोधिचित्तसंवरग्रहण-विधि	अभयाकर
		कुन्-दुगऽ-र्ग्यल्-म्छन्	प्रमाणवार्तिक-कारिका	धर्मकीर्ति
	(ग्नुङ्-स्तोन्) दोर्-र्जे-र्ग्यल्-म्छन्	लक्ष्मीकर	नागानंदनाटक	श्रीहर्षदेव
		,,	बोधिसत्त्वावदान-	क्षेमेंद्र (महा-

काल	अनुवादक	सहायक, या ग्रंथ-सामग्रिक	अनुवादित ग्रंथ	
		लक्ष्मीकर	-कल्पलता	-कवि
		"	काव्यादर्श	दंडी
१२९०-१३१४	(शु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब्		(कलाप) धातुकाय	दुर्गसिंह
			स्याद्यंतप्रक्रिया	हर्षकीर्ति
		सुमनश्री	नवश्लोकी	कंबल
		"	ऊर्ध्वजटाऽनुत्तरतंत्र[1]	
१३०१-८०	ध्यङ्-छुब्-चे-मो (ब्लो-ग्रोस्-ब्र्तन्-पा)	सुमनश्री (कश्मीरी)	मेघदूत	कालिदास
			अभिधर्मसमुच्चयटीका	
चोङ्-ख-प-युग (१३९६-१६६४)				
१३८४-१४६८	वनरत्न	(ङगोस्) यिद्-दम्-छे-ग्झोन्-नु-द्पल् (जन्म १३५२)		
		(सूतग्) छोस्-रब्-रिन्-छेन् (जन्म १४०५)		
		शेस्-रब्-र्ग्यल् (जन्म १४२२)		
	(ग-न्तु) धर्मपालभद्र जन्म १५२७		अभिधर्मकोशटीका	स्थिरमति
			कालचक्रगणित	
			ईश्वरकर्तृत्वनिराकृति	नागार्जुन
			मंजुश्रीशब्दलक्षण	भव्यकीर्ति
			" वृत्ति	देव (कलिंगराज)
	(र्ग्येल्-खम्स्-प) कुन्-द्गऽ-स्ञिङ्-पो (तारानाथ) जन्म १५७५	कृष्णभट्ट (कुरक्षेत्र)	सारस्वतव्याकरण	अनुभूतिस्वरूपाचार्य
वर्तमान युग (१६६४-....)				
१६६५	फुन्-छोग्-ल्हुन्-ग्रुब्[1]	गोकुलनाथमिश्र (कुरक्षेत्र)	प्रक्रियाकौमुदी (१६५८)	रामचंद्र
		बलभद्र	सारस्वतव्याकरण (१६६५)	अनुभूति-स्वरूपाचार्य
		गौतमभारती, ओंकारभारती, उत्तमगिरि	आयुर्वेदसारसमुच्चय (१६६४)	

[1] यह सूची पूर्ण नहीं है। इसमें सिर्फ समकालीन अनुवादकों को दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। तेरहवें दलाई लामा मुनि शासनसागर का [illegible] १८ दिसंबर १० (अगहन की अमावस्या) को ल्हासा में [illegible]।